चन्दामामा
सितंबर १९९४

इससे बढ़कर कौन !

नया

बिग चीफ

फलों के स्वादवाली टॉफी

केला • मैंगो • ऑरेंज

"क़दम-क़दम पर
भरे दम" मिक्स.
Bonny Mix
Bonny Mix
Bonny Mix
भरपूर शक्तिदायक मिक्स
Hindustan Foods Ltd., Goa.
Contains no artificial colours and flavours.

कैल्शियम कुमारी, टीना के कारनामे.

''सरकस और शक्ति''

चन्दामामा

सितंबर १९९४

एक प्रति : ४.००

वार्षिक चन्दा : ४८.००

चन्दामामा

संपादक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

स्वास्थ्य-पाठशालाओं द्वारा

"स्वास्थ्य संपत्ति है" "आरोग्य महाभाग्य है" ये लोकोक्तियाँ अब वास्तविकता बनकर रह गयी हैं। एक समय था, जब कि स्वास्थ्य वैयक्तिक विषय था। परंतु अब यह हर देश का सार्वजनिक विषय है। स्वस्थ व्यक्ति केवल अपने परिवार के लिए ही लाभदायक नहीं, बल्कि उस समाज के लिए भी लाभदायक है, जहाँ वह रहता है। इस वास्तविकता को दृष्टि में रखकर हर किसी देश ने इस दिशा में ठोस कदम उठाया है। इससे जीवन-रेखा लंबी हो गयी और मृत्यु - रेखा लघु। अब अधिकाधिक लोग सत्तर-अस्सी की उम्र से भी अधिक जीवित रहने लगे हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि लोग अस्वस्थ नहीं होते। परंतु रोगों के मूल कारक व्यक्ति विशेष नहीं हैं। अस्वस्थता के मूल कारण हैं कलुषित जल, वायु। इनके साथ-साथ वैयक्तिक स्वच्छता का अभाव।

वैयक्तिक स्वास्थ्य की सुरक्षा के संबंध में पाठशालाएँ और अध्यापक प्रमुख पात्र अदा कर सकते हैं। चूँकि विद्यार्थी अपना अधिकाधिक समय पाठशालाओं में बिताते हैं, इसलिए अध्यापकों का यह कर्तव्य है कि वे विद्यार्थियों को स्वास्थ्य के महत्व के बारे में पूरी जानकारी दें।

इससे विद्यार्थी अपने को साफ-सुथरा और स्वच्छ रख सकेंगे। यह कोई आवश्यक नहीं है कि अध्यापक अपने को अध्यापन-कार्य तक ही सीमित रखें। उन्हें विद्यार्थियों को आरोग्य के सूत्र भी बताना चाहिये और ध्यान रखना चाहिये कि क्या वे इन सूत्रों को अमल में ला रहे हैं या नहीं।

इससे विद्यार्थी और अध्यापकों का ही लाभ नहीं होता, बल्कि पूरे समाज का होता है। उनका पूरा परिवार स्वास्थ्य-योजना से लाभान्वित हो सकता है। स्वस्थ रहने का उनका संदेश उनके माता-पिता, भाई-बंधु तथा समाज के लिए लाभदायी सिद्ध होगा।

यह तो सर्वविदित बात है कि बच्चे देश की धरोहर हैं। इस दिशा में उनका योगदान, सहयोग व मार्ग-दर्शन अवश्य ही महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

वर्ष : ४८ सितंबर १९९४ अंक : ९
एक प्रति : रु. ४/- वार्षिक चन्दा : रु ४८/-

चन्दामामा

जो प्रकट करती है भारत का महान वैभव – अतीत और वर्तमान का – सुंदर सुंदर
कथाओं द्वारा महीने बाद महीने ।

रंगीन चित्रों से सजकर ६४ पृष्ठों में फैली यह पत्रिका प्रस्तुत करती है चुनी हुई कई रोचक-प्रेरक
पुराण कथाएँ, लोक कथाएँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, महान विभूतियों की जीवन-झलकियाँ,
आज की अनेक मोहक कथाएँ और जानने की बातें जो हों सचमुच काम की ।

निकलती है ११ भाषाओं में और संस्कृत में भी ।

चन्दे की जानकारी के लिए लिखें इस पते पर:

डाल्टन एजन्सीज, १८८ एन.एस.के. रोड, मद्रास-६०० ०२६.

समाचार-विशेषताएँ
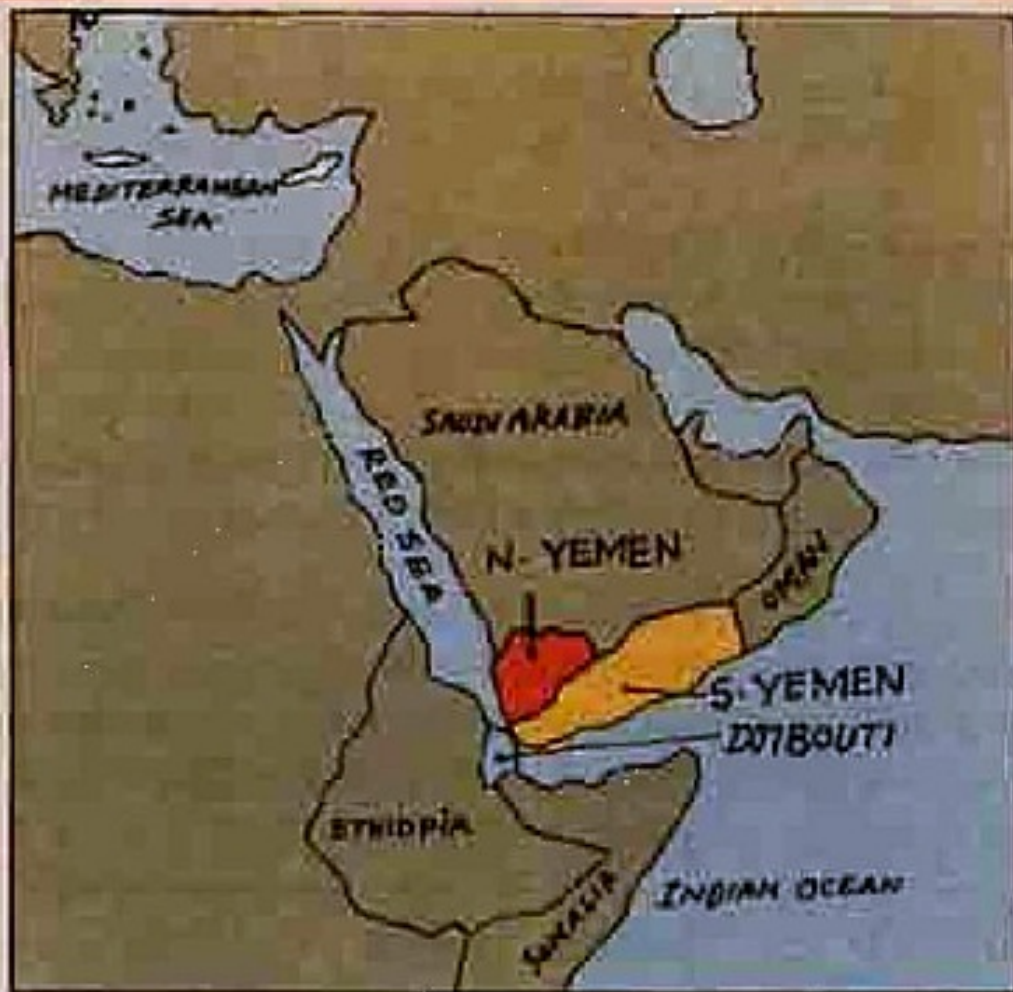
भाई-भाईयों में युद्ध

"भाई-भाईयों में युद्ध" का शीर्षक देकर कुछ समाचार-पत्रों ने एमेन के आंतरिक युद्ध के संबंध में अनेकों समाचार प्रकाशित किये। अल्जेरिया के पूर्व विदेश मंत्री लखदर इब्राहीम संयुक्त राष्ट्र संघ के विशिष्ट दूत बनकर वहाँ स्वयं गये। उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि भाई-भाईयों की इन हत्याओं को तत्क्षण रोक दें।

इन समाचार-पत्रों की दृष्टि में उत्तर तथा दक्षिण एमेन की प्रजा भाई-भाई है। चार सालों के पहले उत्तर तथा दक्षिण एमेन एक हुए। पर, पुनः उन्होंने आपस में बारंबार युद्ध किया। दक्षिण एमेन अलग हो गया और उसने अपने को स्वतंत्र देश घोषित किया। इस घोषणा के साथ-साथ दोनों में युद्ध भी छिड़ गया। करीबन यह युद्ध सौ दिन चलता रहा। फलस्वरूप अनेकों लोग इस युद्ध में मारे गये।

जब सम्मिलित एमेन की स्थापना हुई, तब उत्तरी एमेन के 'पीपुल्स जनरल कांग्रेस' के नेता अली साले यूनियन के अध्यक्ष बने। दक्षिणी एमेन के 'एमेन सोशलिस्ट पार्टी' के नेता अली सलीम अलबीद उपाध्यक्ष बने। यूनियन बनने के पहले उत्तरी एमेन साम्प्रदायिक इस्लाम धर्म के अधिपति के अधीन था। दक्षिणी एमेन को तत्कालीन सोवियत यूनियन से सहायता व सहयोग मिलते थे, जिससे वह सोशलिस्ट देश बना। दोनों का जब सम्मिलित देश बना, तभी राजनैतिक परिशीलकों ने संदेह व्यक्त किया कि यह गठबंधन अधिक समय तक टिक नहीं पायेगा। किन्तु उनकी आशा थी कि देश की आर्थिक प्रगति के लिए वे अपने भेद-भावों को भूल जाएँगे और मिल-जुलकर प्रयास जारी रखेंगे।

१९९३ में प्रथम आम चुनाव हुए। विधान सभा के सदस्यों की संख्या ३०१ है। 'पीपुल्स जनरल कांग्रेस' को १२१

स्थान मिले तो 'सोशलिस्ट दल' को ५६ स्थान। 'एमिन गायरिंग फार रिफार्म' नामक दल को सोशलिस्ट दल से भी अधिक स्थान प्राप्त हुए। 'पीपुल्स जनरल कांग्रेस' से हाथ मिलाकर साले अध्यक्ष बने और उन्होंने सरकार बनायी। किन्तु यह सरकार एमेन यूनियन की एकता की रक्षा नहीं कर पायी। अध्यक्ष साले ने दक्षिणी एमेन के तेल की खानों पर अपना अधिकार बनाये रखना चाहा। उनके इन प्रयत्नों का विरोध हुआ। दोनों सेनाओं में युद्ध प्रारंभ हुआ।

मई ५ को उत्तरी एमेन ने दक्षिणी एमेन के युद्ध विमान को गिरा दिया। उत्तरी एमेन ने आरोप लगाया कि दक्षिणी एमेन ने उनके वैमानिक दल पर आक्रमण किया। अध्यक्ष साले ने आपत्कालीन स्थिति घोषित की। अली सलीम अलीबीद को उपाध्यक्ष पद से हटा दिया। सुरक्षा तथा तेल शाखा के मंत्रियों को भी हटा दिया। दक्षिण एमेन के गवर्नर का भी तबादला कर दिया गया।

उत्तरी एमेन की सेना संख्या में बड़ी थी। दक्षिण एमेन की सेना से युद्ध करने वह चल पड़ी। दक्षिणी एमेन ने 'स्कड' जैसे आधुनिक हथियारों का प्रयोग उनपर किया। दक्षिणी एमेन यूनियन से अलग हो गया और स्वतंत्रता की घोषणा की। उत्तरी एमेन ने शर्त रखी कि अगर साले की सरकार को वह मान्यता दे तो युद्ध रोकने के लिए वह सन्नद्ध है। इसके उत्तर में दक्षिणी एमेन ने सम्मिलित देश को बनाये रखने के लिए सात शर्तें रखीं, जिन्हें साले ने तिरस्कृत किया।

तीन महीनों तक आंतरिक युद्ध चलता रहा। इन तीन महीनों के अंदर छह बार दोनों पक्षों ने युद्ध की समाप्ति के लिए अपनी-अपनी स्वीकृति दी। परंतु स्वीकृति के चंद घंटों के बाद ही वे एक दूसरे पर यह आरोप लगाते हुए युद्ध करने लगे कि शर्तों का उल्लंघन किया गया है।

दक्षिण एमेन की हार के बाद उस देश के नेता अली सलीम अलबीद तथा अन्य मुख्य नेता पड़ोसी देश ओमन भाग गये। राजनैतिक परिशीलकों का अभिप्राय है कि पड़ोसी देश में आश्रय पाते हुए भी दक्षिणी एमेन के नेता अधिक दिनों तक वहाँ हाथ धरे नहीं बैठेंगे। इधर उत्तरी एमेन ने घोषणा की है कि उसने युद्ध स्थगित कर दिया है और वह जनतंत्र की स्थापना में क्रियाशील है। देश में शीघ्र ही चुनाव भी होंगे, जिसमें कोई भी राजनैतिक दल भाग ले सकता है।

वर्तमान स्थिति को दृष्टि में रखते हुए यह कहना कठिन है कि भविष्य में एमेन में क्या होनेवाला है?

एमेन का इतिहास

अपने सुगंध - द्रव्यों के लिए संसार भर में प्रसिद्ध प्राचीन देश है एमेन। सोलहवीं शताब्दी में वह ओटमन टर्कियों के साम्राज्य का एक भाग था। १२३९ में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने वहाँ के सुलतानों से इसे हथिया लिया। चूँकि एडेन केन्द्रस्थान था, इसलिए वहाँ आते-जाते जहाज़ों पर ब्रिटिशवालों का आधिपत्य अधिक हुआ करता था। प्रथम विश्व युद्ध में टर्की हार गया तो अन्य देशों की तरह एमेन ने अपने देश को 'अरब रिपब्लिक आफ एमेन' के नाम से स्वतंत्र घोषित किया। इसके एक साल बाद एडेन और कुछ दूसरे प्रांतों ने सम्मिलित रूप से ब्रिटिशवालों से अनुरोध किया कि वे वहाँ से अपनी सेनाओं को निकाल लें। १९६७ में ब्रिटिश सेनाएँ वहाँ से चली गयीं। इसके पश्चात 'पीपुल्स फेडरेशन आफ सदर्न एमेन' की स्थापना हुई। १९७० में सत्तारूढ़ मार्क्सिस्ट दल ने उसे नाम दिया 'पीपुल्स डेमाक्रटिक रिपब्लिक आफ एमेन'। इसके दूसरे साल ही दोनों एमेन देशों में युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध एक साल तक चलता रहा। १९७९ में समझौता हुआ। सम्मिलत एमेन के प्रबंध के लिए चर्चाएँ हुईं और संयुक्त 'एमेन कौन्सिल' के रूप में परिणित हुआ। सना राजधानी बनी और 'रिपब्लिक आफ एमेन' बना।

भूतों ने शादी करायी

कनकपुर का कमलाकर शहर की कचहरी में नौकरी करता था। वह हर रोज़ जंगल के रास्ते से शहर आता और शाम को उसी रास्ते से लौटता था। बचपन में ही उसका बाप गुजर चुका था इसलिए उसकी माँ ने नाना प्रकार की यातनाएँ सहकर उसे बड़ा किया।

कमलाकर का कंठस्वर बहुत ही मधुर था। माता के कहने पर एक दिन रात को वह गा रहा था। उस संगीत के माधुर्य में डूबती हुई उसने आँखें बंद कीं। बस, आँखें सदा के लिए बंद ही रहीं। माँ की मृत्यु से वह अनाथ हो गया, संसार में वह एकाकी हो गया।

उसे स्वयं रसोई बनानी पड़ती थी। उसके कष्टों को देखकर उसके दोस्त ने सलाह दी "कितने दिनों तक तुम ये कष्ट झेलोगे? किसी लड़की को पसंद करो और शादी कर डालो"।

शादी की बात सुनते ही उसे पड़ोस की पार्वती का स्मरण आया। पार्वती का पिता छोटा व्यापारी था। पार्वती उसकी इकलौती पुत्री थी। वह खूबसूरत लड़की थी। वह हर दिन शाम को गाँव के बाहर के मंदिर में आ - जाया करती थी। कमलाकर के घर के सामने जो फुलवारी थी, उससे फूल तोड़कर जाया करती थी। लेकिन कमलाकर ने कभी भी उससे बात नहीं की।

एक दिन शाम को जब वह कचहरी से लौटा तो उसने देखा कि पार्वती फूल चुन रही है तो उसने उससे बात करने का साहस किया। उसने कहा "मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ। तुमसे शादी करने की मेरी इच्छा है। क्या तुम मुझसे शादी करोगी?" निधड़क उससे उसने पूछ ही लिया।

उसकी बातें सुनकर क्षण भर के लिए पार्वती स्तब्ध रह गयी। उसने पूछा "मैं जानती हूँ, तुम बहुत अच्छा गा सकते हो। किन्तु तुम्हें तलवार चलाना आता है? क्या तुम साहसी हो? लोग

-शरत

तुम्हारी तारीफ करते होंगे , क्योंकि विनय से तुम सर झुकाकर गली में गुज़रते हो, लेकिन सर उठाकर जाने के लिए क्या तुममें आर्थिक सामर्थ्य है? अन्य मनुष्यों की तरह तुम्हारी आँखें है, नाक है, किन्तु तुमने कभी दर्पण में अपने आप को देखा हैं? क्या तुमने देखा है कि तुम्हारी आँखें और नाक कितनी भद्दी हैं। भविष्य में कभी भी मेरे सामने ऐसा प्रस्ताव रखने का साहस मत करो। सावधान रहो।'' कहती नाराज़ होती हुई वह बोली।

कमलाकर कुछ बताना ही चाहता था कि उसने चुने हुए फूल ज़मीन पर फेंक दिया और जल्दी-जल्दी अपने घर के अंदर चली गयी। उसकी बात उसने सुनने की चेष्टा ही नहीं की।

कमलाकर से यह अपमान सहा नहीं गया। उसे जीवन से विरक्ति हो गयी। अंधेरे में ही वह जंगल की ओर चल पडा।

चाँदनी रात थी। कमलाकर जंगल में एक चट्टान पर बैठ गया। उसे उसकी माँ की याद आ गयी। माँ का प्रिय गीत वह आलापने लगा।

जब वह गा चुका, तब जंगल के पेड़ के पीछे से आवाज़ आयी ''अद्‍भुत गीत है। कितना मधुर है। हम तो जानते नहीं यह क्या राग है, किन्तु तुम्हारा गीत सुनते-सुनते हमें अपनी सुध ही ना रही। हम तो संगीत - प्रवाह में बह गये'' ताली बजाते हुए तीन भूत उसके पास आ खड़े हो गये।

जीवन से विरक्त कमलाकर भूतों को देखकर भयभीत नहीं हुआ। भूत कहने लगे ''गीत तो बहुत ही अच्छा है, लेकिन विषाद से भरा हुआ है। उल्लास से भरा कोई गीत गाओ और हमें आनंदित करो''।

''मेरे जीवन में आनंद लुप्त हो गया है। मैं तो विषाद से भरे गीत ही गा पाऊँगा। आनंद से भरे गीत गाना मेरे बस की बात नहीं।'' गहरी साँस लेता हुआ वह बोला।

''तुम तो जवान हो। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? इतने दुखी क्यों हो? हमें इसका कारण बताओ'' भूतों ने कमलाकर से पूछा। उसने उनसे सविस्तार बताया और कहा कि पार्वती के तिरस्कार ने मुझे दुखी कर दिया।

भूतों ने परस्पर चर्चा की और फिर उससे

कहा "पार्वती घमंडी दीखती है। किन्तु तुम दुखी ना होना। इस शादी की बात हम पर छोड़ दो। यहाँ से सीधे शहर चले जाओ। अगली पूर्णिमा के दिन तुम फिर यहाँ आना।"

भूतों की बातों का उसे विश्वास नहीं था। घर लौटना उसे पसंद नहीं था, इसलिए वह शहर की ओर चल पड़ा।

दूसरे दिन पार्वती जब मंदिर से लौट रही थी, तब अंधेरा छा चुका था। वह पेड़-पौधों से भरी पगडंडी से गुज़र रही थी तो उसने देखा कि एक बाघ एक खरगोश का पीछा कर रहा था। अब वह उसके सामने आ गया। जब खरगोश झुरमुटों के पीछे छिप गया तो वह बाघ भयंकर रूप से चीत्कार करता हुआ उसपर झपटने के लिए आगे बढ़ा। पार्वती चिल्ला पड़ी और आँखें बंद कर लीं। वह डर से थर - थर काँप रही थी।

जब बाघ ने बहुत समय तक उसपर आक्रमण नहीं किया तो उसने आँखें खोलीं। वहाँ का दृश्य देखकर वह चकित रह गयी। उसने देखा कि कमलाकर चमकती हुई तलवार म्यान में रख रहा है।

बाघ का सर आधा कटा हुआ था और वह जमीन पर पड़े छटपटा रहा था।

पार्वती को लगा कि कमलाकर महावीर है। अपनी कृतज्ञता जताने के लिए उसने एक कदम आगे भी नहीं बढ़ाया कि वह अंधकार में विलीन हो गया। शायद उसकी कृतज्ञता वह स्वीकार करना नहीं चाहता था।

दुखी पार्वती आगे बढ़ी। वह जैसे ही आगे बढ़ी, तीनों भूत अपने-अपने असली रूपों में
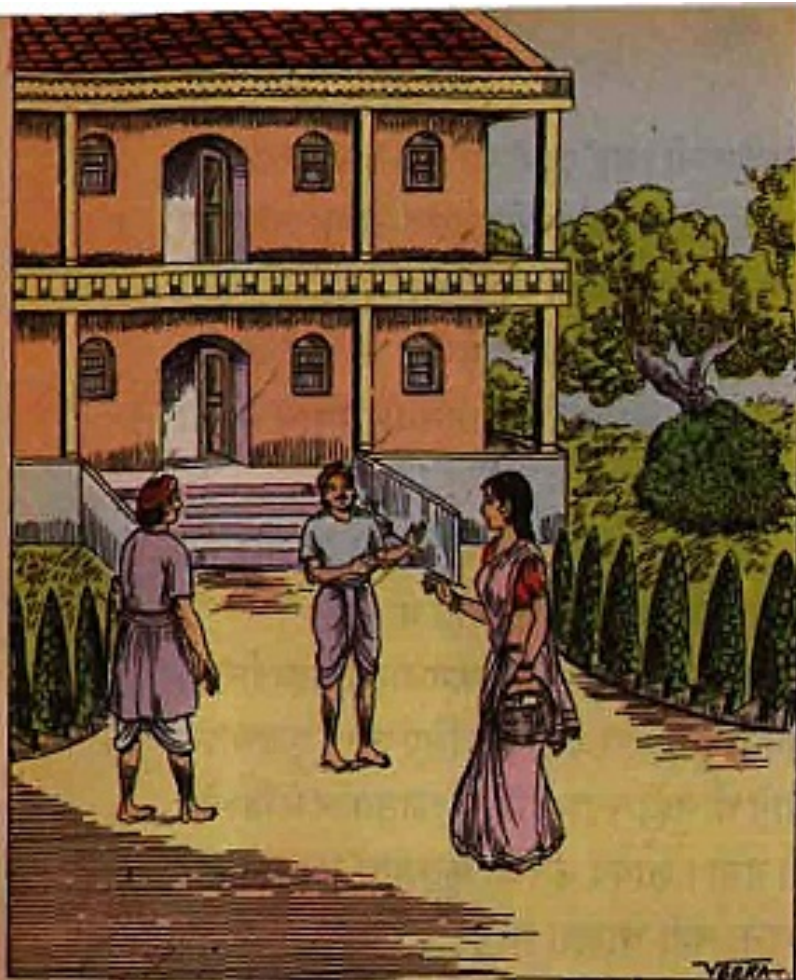
प्रकटित हुए। उनको इस बात का आनंद था कि उनका प्रथम प्रयत्न सफल हुआ है। भूतों ने ही खरगोश, वाघ तथा कमलाकर का रूप धारण किया था।

दूसरे दिन जब पार्वती मंदिर से लौट रही थी, तब उसने देखा कि पगडंडी से थोड़ा हटकर नया-नया बना एक बहुत बडा महल है। उसे देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ। उसने देखा कि कमलाकर महल से अभी-अभी बाहर आया है और नौकरों को कोई आदेश देकर अंदर चला गया। पार्वती को विश्वास नहीं हो रहा था। अपना संदेह दूर करने के लिए वह नौकरों के पास आयी और पुछा "यह भवन किसका है?"

उन्होंने कहा "यह श्री कमलाकर का है। पुराने घर में रहना उन्हें पसंद नहीं था। इसलिए इस नूतन भवन का निर्माण करवाया है"।

आश्चर्य में डूबी पार्वती ने पूछा "एक ही दिन में इतने बड़े भवन का निर्माण कैसे संभव हो पाया?

"श्री कमलाकर की शक्तियों और युक्तियों से जो परिचित हैं, वे ऐसे पगले प्रश्न पूछने का साहस नहीं करते," नौकर यह कहते हुए, झुँझलाते हुए अंदर चले गये।

पार्वती की समझ में नहीं आया कि यह सब कैसे हुआ? उधर वह अपने घर की तरफ़ बढ़ी और इधर भवन अध्श्य हो गया।

भूत अपनी द्वितीय सफलता पर बहुत ही खुश हुए।

पार्वती रात भर जागती ही रही। कमलाकर के साहस और उसकी संपत्ति के संबंध में ही वह सोचती रही।

दूसरे दिन परेशान पार्वती मंदिर नहीं गयी। जब अंधेरा छा गया, तब वह कमलाकर के घर के सामने की फुलवारी में गयी तो उसने देखा कि वहाँ तीन अद्वितीय सुँदरियाँ हैं। वह उनकी सुँदरता देखती ही रह गयी। उसे लगा कि अवश्य ही अप्सराएँ होंगी, जिनके अपूर्व सौंदर्य के बारे में उसने रपस्तकों में पढ़ा था। ये सुँदरियाँ कोई और नहीं, भूत ही थे।

पार्वती ने चकित होकर उनसे पूछा "तुम कौन हो?"

"हम तीनों सहेलियाँ है। कचहरी के

कर्मचारी कमलाकर को हम चाहती हैं, उनसे प्रेम करती हैं। वे हममें से जिन्हें चाहते हैं, उससे विवाह करने का प्रस्ताव लेकर उनसे प्रार्थना करने आयी हैं।''

''क्या यह कमलाकर का ही घर है?'' सुंदरियों ने पूछा।

''हाँ, घर तो उनका ही है, परंतु आजकल वे यहाँ नहीं रहते। आप मेरा एक संदेह दूर कीजिये। आँखों को चकाचौंध कर देनेवाला सौंदर्य आपमेंहै, फिर भी आप क्यों एक साधारण कमलाकर को चाहती हैं।'' पार्वती ने पूछा।

उसके इस संदेह पर एक सुँदरी हँस पड़ी और बोली ''तुम भी कितनी मूर्ख हो। लगता है, तुम सुँदरता के पीछे पागल हो। सुँदरता के पीछे पागल होकर मेरी दीदी ने भी एक युवक से शादी की, पर क्या हुआ? दुर्घटना हुई और मेरी दीदी का पति......''

पास ही खड़ी दूसरी सुँदरी ने उसकी बात काटते हुए कहा ''अब इतना सब कुछ कहने की क्या ज़रूरत है। अपनी सहेली सुकुमारी की बात भूल गयी? कामदेव मानकर उसने ज़मींदार के बेटे से शादी की। क्या हुआ ? वह तो लंपट था। कोई ऐसा दुर्गुण नहीं, जो उसमें नहीं था। वह तो मेरी सहेली को सताता ही रहता था और''

तीसरी सुँदरी ने उसका मुँह बंद किया और कहने लगी ''इस अंधेरे में उस दुष्ट की बात क्यों करती हो ? उसका नाम भी ना लेना। बड़ी माँ की तीसरी पोती की ही बात लो। छह फुट के उस लंबे, हट्टे कट्टे, गरुड नाकवाले, तिरछी
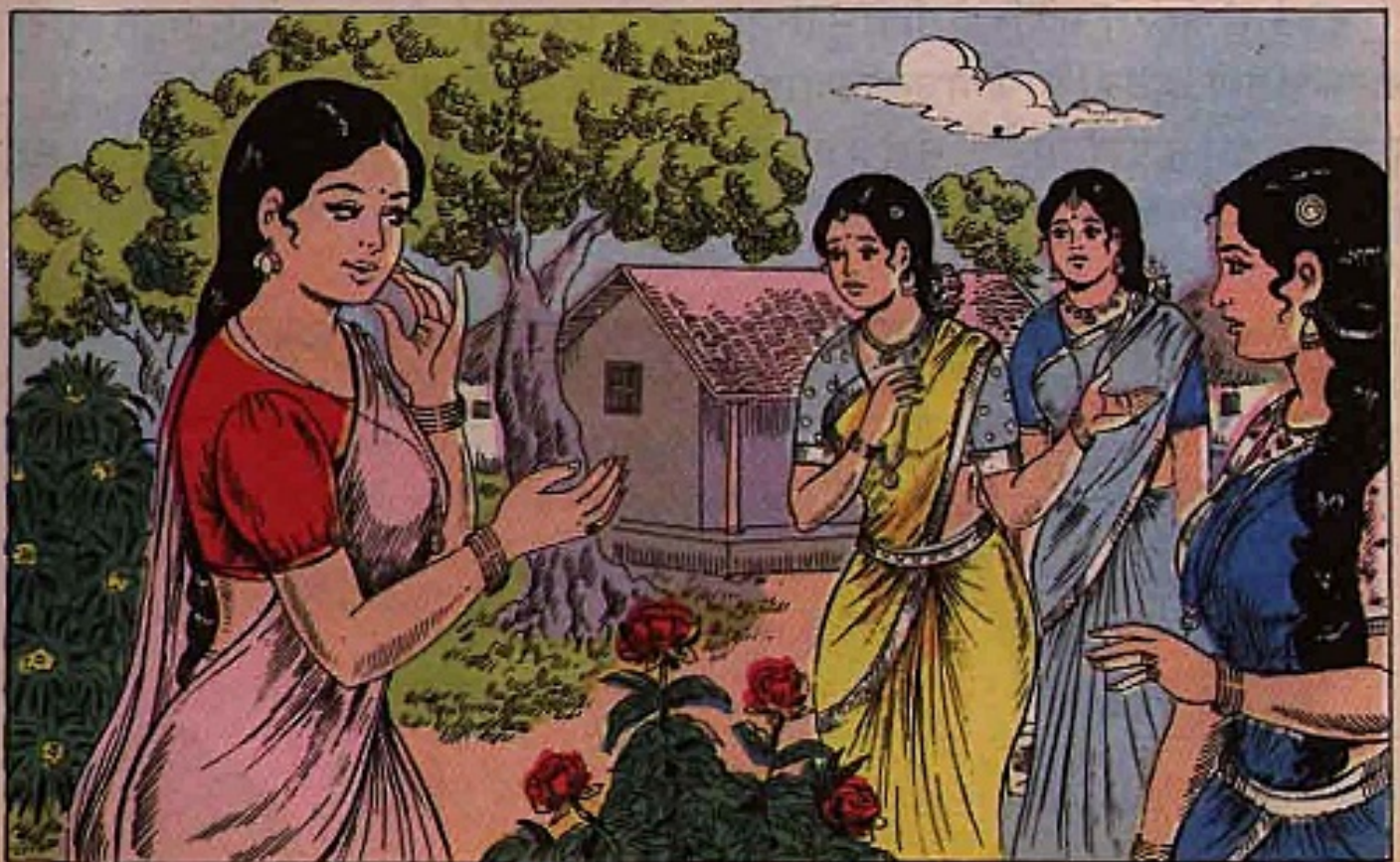
मूँछवाले उस महाबलेश्वर के पीछे वह पागल हो गयी और शादी कर ली। किन्तु उसने उसकी ज़िन्दगी को नरक बना दिया। वह तो उससे दासी से भी हीन व्यवहार कर रहा है। किसी भी क्षण वह आत्महत्या कर सकती है''।

पार्वती झुँझलाती हुई बोली ''आखिर तुम तीनों कहना क्या चाहती हो? यही ना कि कमलाकर सुँदर तो नहीं है, लेकिन बहुत ही गुणवान है। मैं भी जान गयी कि वह साहसी है, अमीर है और गुणवान थी। खेद तो इस बात का है कि आप लोगों के आने में देरी हो गयी। शायद आपको मालूम नहीं कि कमलाकर की शादी तय हो गयी है।''

तीनों ने मुक्तकंठ हो पूछा ''किससे?''

''मुझी से। अब आप लोग जा सकती हैं।'' कहती हुई पार्वती तेज़ी से अंदर चली गयी।

कहने की ज़रूरत नहीं कि ये तीनों सुँदरियाँ और कोई नहीं, भूत ही थे। जैसा उन्होने चाहा, पार्वती के रुख में तब्दीली लाने में वे कामयाब हूईं। अपनी कामयाबी पर उन्हें बेहद खुशी हुई। वे फ़ौरन चमगीदड़ों में बदल गये और जंगल की तरफ़ उडकर चले गये।

पूर्णिमा के दिन तीनों उसी चट्टान के पास आये, जहाँ उनकी मुलाक़ात कमलाकर से हुई। वहाँ पार्वती के साथ उसे उपस्थित देखकर वे घबरा गये। उनको डर भी लगा कि शायद पार्वती उन्हें गाली देने यहाँ आयी हुई है। उनकी घबराहट को देखते हुए पार्वती मुस्कुराती हुई बोली ''तुम तीनों ने मेरा अहंकार तोड़ दिया। जिसे मैं पथ्थर समझती थी, तुम्हीं लोगों के बताने से मैं समझ पायी कि वह पथ्थर नहीं, रत्न है। आप तीनों को अपनी कृतज्ञता जताने के लिए ही यहाँ आयी हुँ। मैं हृदयपूर्वक आपको धन्यवाद देती हूँ।''

भूतों का भय अब दूर हो गया और उन्होने कहा ''इतना अच्छा काम, इतने कम समय में हम कर पाये, इसकी हमें बडी खुशी है। अब तुम दोनों एक मधुर गीत गाओ और हमारे आनंद को और बढ़ाओ।''

कमलाकर और पार्वती ने गीत गाया। भूत खुशी से तालियाँ बजाते रहे और नाचते रहे।

कीर्ति सिंह - ४

(जयवर्मा ने जयसेन का दिया हुआ पिता का पत्र पढ़ा। उस पत्र में उस अद्भुत हार के संबंध में विवरण दिये गये थे, किन्तु वे विवरण गूढ़ार्थों से भरे हुए थे। उसमें संकेत मात्र थे। वे विवरण जयवर्मा समझ नहीं पाया। यों पाँच पीढ़ियाँ गुज़र गयीं। वर्तमान राजा सुषेण ने चाहा कि वह हार उसके पुत्र कीर्तिसिंह को मिले। इसीलिए उसने शक्तिसेना की समझदारी को उपयोग में लाना चाहा। उसी समय कांभोज राजा गरुडदत्त, नगदेश के राजा नागकर्ण तथा चात्त्य देश के राजा कुंडिन वर्मा ने एक कुटिल योजना बतायी। इस योजना के अनुसार वे हार भी अपना बना लेंगे और साथ ही कोसल राज्य पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन कर लेंगे। तीनों ने ऐसी भी योजना बनायी, जिससे गुरुकुल से लौटते हुए कीर्तिसिंह को बंदी बना सकें।)

इधर शक्तिसेना कोसल से निकल पड़ी, उधर गरुडदत्त और उसके मित्र अपने तीन सैनिकों को लेकर जंगल की ओर निकल पड़े।

कीर्तिसिंह तो इस बात से बिल्कुल ही अनभिज्ञ था कि एक दूसरे की जानकारी के बिना वे सब उसी को बंदी बनाने के लिए निकल चुके हैं। उसे तो इस बात का आनंद हो रहा था कि मैं विद्याभ्यास समाप्त करके अपना देश लौट रहा हूँ। कृष्णाष्टमी को दिन उसने प्रातःकाल ही अपने गुरु कृष्णचंद्र से आशीर्वाद पाया। अपने मित्रों से बिदा ली और घोड़ी भानुमती पर सवार होकर निकल पड़ा।

दुपहर तक वह आरावली पर्वत-प्रांतों के मध्य पहुँचा। वहाँ से उत्तरी दिशा में बढ़ेगा

लक्ष्मी गायत्री

तो कोसल राज्य पहुँच सकता है। पूरब की ओर जाने पर कोसल के पूर्वी सरहद का जंगल है। वहीं शक्ति का मंदिर भी है। दूसरी तरफ कांभोज राज्य है।

घोड़ी भानुमति वहाँ तक बहुत ही तेज़ी से दौडती हुई आयी। उस प्रांत में पहुँचने के बाद वह हठात् रुक गयी।

बिना विश्राम लिये भानुमति एक दिन तक तेज़ी से दौड़ने की क्षमता रखती है। लेकिन इस प्रदेश में आकर हठात् रुक गयी और आगे बढ़ने से मना भी कर रही है। घोड़े की इस नीयत से कीर्तिसिंह को आश्चर्य भी हुआ और संदेह भी।

वह फ़ौरन घोड़ी से उतरा और चारों ओर अपनी दृष्टि फैलायी। किसी क्रूर जंतु का कोई निशान भी नहीं था। वह सोचने लगा कि भानुमति फिर रुक क्यों गयी?

थोड़ी देर वह सोचता रहा और उसे लगा कि उसे कोई हानि पहुँचनेवाली है।

"भानुमति, निर्भीक रहो, मेरा कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता। उस आनेवाली हानि से मैं निपट लूँगा।" कहते हुए घोड़ी को उसने थपथपाया और सवार होने का प्रयत्न करने लगा।

घोड़ी सकपकाती हुई थोडा हट गयी। कीर्तिसिंह ने सोचा, ठीक है, थोड़ी दूर चलकर जाएँगे। देखते हैं, क्या होता है? उसने म्यान से तलवार निकाली और धीरे - धीरे आगे बढ़ने लगा। भानुमति भी पीछे - पीछे आने लगी। दोनों थोड़ी दूर गये भी।

उस समय कीर्तिसिंह को ध्वनि से लगा कि कोई पतली वस्तु उसके सिर पर आ गिरनेवाली है, तो तक्षण उसने अपना सर ऊपर उठाया।

उसने देखा कि एक पेड़ से लोहे का एक पतला जाल बड़े वेग से उसके सिर पर गिरने ही वाला है।

कीर्तिसिंह ने बडे ही वेग से उस जाल को सिर पर गिरने से रोका। उसे ऊपर उछाला। छलाँग मारकर हट गया। पीछे-पीछे आती

हुई उस घोडी पर जाल फिसला और भानुमति उसमें फँस गयी।

कीर्तिसिंह ने तुरंत अपने को संभाल लिया। कमर में लटकती हुई छुरी निकाली और ऊपर फेंकना ही चाहा कि इतने में दूसरी ओर से पेड़ पर बाणों की वर्षा हुई। उन बाणों की बौछार से चिल्लाते हुए तीन सैनिक धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़े और छटपटाते हुए मर गये। यह सब कुछ कुछ क्षणों में हो गया।

इस आकस्मिक आक्रमण से कीर्तिसिंह को विस्मय हुआ। उसने तलवार हाथ में ली और उस ओर देखते हुए चिल्ला पड़ा "कौन है वहाँ?"

उसके इस प्रश्न के समाधान के रूप में उसने देखा कि पतली मूँछवाला एक नौजवान पेड़ के पीछे से आया और उसे नमस्कार किया।

कीर्तिसिंह ने चकित होते हुए उस युवक से पूछा "तुम कौन हो? ये मरे हुए लोग कौन हैं?"

"मैं नहीं जानता कि वे कौन हैं? शायद कोई चीज़ उनसे मिल सकती है, जिससे उनको पहचाना जा सकता है और जाना जा सकता है कि ये कौन हैं और कहाँ के हैं।" युवक ने विनयपूर्वक कहा।

बिना कोई उत्तर दिये कीर्तिसिंह भानुमति की तरफ़ बढ़ा। उसे जाल से निकाला। फिर मरे दुश्मनों के कपड़े ढूँढने लगा। जब वह इन कामों में निमग्न था, तब युवक तलवार

हाथ में लिए खड़ा हो गया और उसकी रक्षा करता रहा। उसका अनुमान था कि दुश्मन शायद फिर से हमला करेंगे।

तीनों के कपड़ों को ढूँढ़ने के बाद कीर्तिसिंह को मालूम हो गया कि वे तीनों तीन राज्यों के सैनिक हैं। एक कांभोज का, दूसरा चाक्य और तीसरा नग देश का सैनिक था। उसे थोडा - बहुत मालूम था कि कोसल और कांभोज के बीच पीढ़ियों से चला आता हुआ वैमनस्य है, शत्रुता है। अब उसे यह जानने में देरी नहीं लगी कि तीनों राज्य एक हो गये हैं और उसे मारने का षड्यंत्र रचा है।

उसने उस युवक की तरफ़ देखा और पूछा "अब बताओ, तुम हो कौन?" युवक ने गंभीर हो कहा "आपके सवाल का जवाब देने के पहले मेरे एक छोटे-से सवाल का जवाब आपको देना होगा।"

"सवाल और मुझसे? बोलो, वह क्या सवाल है?" कीर्तिसिंह ने उसे ग़ौर के देखते हुए पूछा।

युवक ने पूछा "आकाश के राजा और रानी कौन हैं?" यह सवाल सुनते ही कीर्तिसिंह ने उस युवक को ध्यान से देखा और हँसते हुए कहा "शक्तिसेना।"

युवक वेषधारी शक्तिसेना ने अपना सर झुकाते हुए कहा "यह तो मेरे प्रश्न का समाधान नहीं है"।

कीर्तिसिंह मुस्कुराया। उसे वह घटना याद आ गयी। वह कार्तिक पूर्णिमा के दिन कार्तिक दीपोत्सव के अवसर पर अपनी माता के साथ आया था। अनगिनत नक्षत्रों के बीच अपनी कांति से जगमगाते हुए चंद्र को देखकर वह चिल्ला पड़ी "वाह, आकाश कितना सुँदर दीख रहा है। नदी में फैले दीपों से तो आकाश के नक्षत्र ही अत्यंत मनोहर दीख रहे हैं। यहाँ से राजा होने के बदले आकाश का राजा बनें तो कितना अच्छा होगा। कीर्तिसिंह, क्या तुम इस आकाश का राजा बनोगे?" बालिका शक्तिसेना ने उससे

यह सवाल किया था। और उसने जवाब भी दिया। ये सारी बातें उसे अब याद आने लगीं।

उसने शक्तिसेना को यों उत्तर दिया "मैं अवश्य ही आकाश का राजा बनूँगा और तुम्हें रानी बनाऊँगा"।

उनकी बातचीत सुनती हुई कीर्तिसिंह और शक्तिसेना की माताएँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। कीर्तिसिंह समझ गया कि यह प्रश्न पूछकर शक्तिसेना जानना चाहती है कि बाल्यकाल में उन दोनों के बीच जो प्रेम था, वह अब भी है या नहीं।

हँसता हुआ कीर्तिसिंह शक्तिसेना के पास आया और बोला "कीर्तिसिंह आकाश का राजा है। शक्तिसेना रानी है। मेरा समाधान सही लगा ना महारानी"।

शक्तिसेना ने लज्जा से अपना सर झुका लिया।

"शक्ति, बताओ तो सही, तुम इस वेष में यहाँ क्यों आयी हो?" कीर्तिसिंह ने पूछा।

"महाराज ने स्वयं मुझे भेजा है।" कहती हुई शक्तिसेना ने पूरा विवरण दिया। अपने वस्त्रों मे छिपाये हुए पत्र को बाहर निकाला। उसका आँखों से स्पर्श किया और उसे कीर्तिसिंह को सौंपा।

मरे हुए तीनों सिपाहियों को दिखाते हुए तुरंत कीर्तिसिंह ने कहा "यह जानकर ही

कि तुम इस पत्र को मुझे देने ले आ रही हो, ये लोग भी यहाँ आये होंगे"।

"मेरे आने की ख़बर इनके मालूम हो, इसकी कम गुँजाइश है। महाराज ने जल्दी-जल्दी में मुझे भेजने का निश्चय किया था। इसके पहले ही इन्होने तुम्हें मारने का षड़यंत्र रचा होगा।" शक्तिसेना ने उसके संदेह का निवारण करते हुए कहा।

"हाँ, ऐसा भी हो सकता है। मुझे बंदी बनाकर मुझे मारने की की धमकी देकर हार पाने की इन्होने योजना बनायी होगी। जो भी हो, इससे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों राज्यों के राजा मिल गये हैं और वे तीनों इस षड़यंत्र में भागीदार हैं। हमारे पास

अब समय बहुत कम है। ये तीनों अगर निश्चित अवधि में निर्णीत स्थान पर नहीं पहुँचे तो अवश्य ही वे दुष्ट मुझे ढूँढ़ने के काम में लग जायेंगे। इसलिए अच्छा यही होगा कि हम अपना काम यथाशीघ्र कर लें और राजधानी लौटें।" कहते हुए कीर्तिसिंह ने पत्र खोला और पूरा पढ़ने के बाद शक्तिसेना से पूछा "परमेश्वरी किसके सम्मुख अपना सर झुकाती है?"

शक्तिसेना हँसती हुई बोली "एक और बार पढ़ना। परमेश्वरी स्त्री है। स्त्री भला किसके सम्मुख सिर झुकायेगी। अपने पति के सम्मुख। स्पष्ट है कि परमेश्वरी अपना सिर परमेश्वर के सम्मुख झुकाती है"।

"तुमने बिल्कुल ठीक कहा। बाक़ी बातें तो स्पष्ट हैं। परमेश्वर का निवास-स्थल है उत्तरी दिशा में। मनुष्य का जीवनाधार आहार है। और यह आहार देती है, पंचभूतों में से एक - भूमि। संपूर्ण भूमि को एक ही पग से नापनेवाला है वामन। उसने पूछा था केवल तीन फुट की भूमि।" कीर्तिसिंह ने यों समस्या हल की।

"यहाँ तक तो तुमने सही ही समझा है कीर्तिसिंह। किन्तु इन आधारों से हम कैसे जान पायेंगे कि वह हार है कहाँ? शक्तिसेना ने प्रश्न किया।

कीर्तिसिंह इसका जवाब तुरंत दे नहीं पाया। वह थोड़ी देर गंभीरता से सोचता रहा और आख़िर बोला "शक्ति, इन आधारों की छान-बीन करने के बाद मुझे लगता है कि वह हार शक्ति के मंदिर की उत्तरी दिशा में है। भूमि के तीन फुटों के तले गाड़कर सुरक्षित रखी गयी है।"

इन बातों को सुनने के बाद शक्तिसेना प्रसन्न हुई। कीर्तिसिंह निकलते हुए बोला "चलो, शक्ति, संध्या होते-होते हमें शक्ति के मंदिर में पहुँचना है।"

दोनों घोड़ों पर सवार हुए और पेड़ों के नीचे से तेज़ी से जाने लगे।

शक्ति - मंदिर पहुँचते-पहुँचते शाम हो गयी। दोनों घोड़ों से उतरे और मंदिर के अंदर
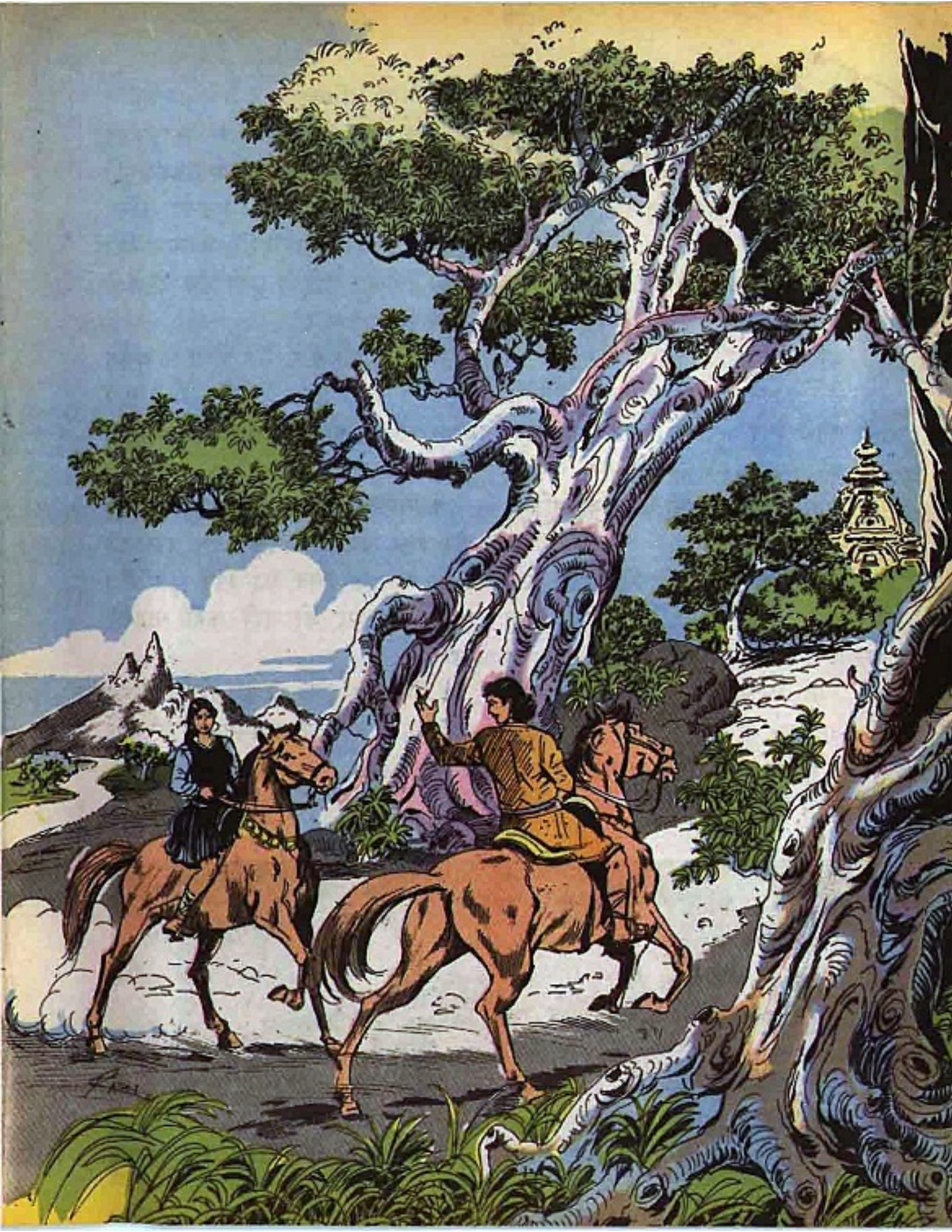
गये। उसकी देख-भाल करनेवाला कोई नहीं था, इसलिए पूरा प्रांगण निरुपयोगी पौधों से भरा हुआ था। पूरे मंदिर पर धूलि छायी हुई थी और वह प्रदेश मकडियों से भरा हुआ था।

मंदिर की इस दयनीय स्थिति को देखकर दोनों का हृदय दुख से भर गया।

शक्तिसेना मंदिर के मुख-द्वार की चाभी भी अपने साथ ले आयी थी। कीर्तिसिंह ने उससे मुख-द्वार खोला और अंदर प्रवेश किया। गर्भगृह में उन्हें चमकते हुए हीरे का बेसर पहनी शक्ति की मूर्ति के दर्शन हुए।

कीर्तिसिंह और शक्तिसेना ने घुटने टेके और भक्ति से देवी शक्ति को प्रणाम किया।

"माँ, महाशक्ति, जो वस्तु न्यायतः मेरी है, उसे पाने के लिए आया हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपनी इस वस्तु का फल सारी जनता में बाँटूँगा। तुम स्वयं जानती हो कि इसे पाने का अधिकार मुझे है अथवा नहीं। मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं तुम्हारी करुणा का पात्र बन सकूँ। इससे बढ़कर मुझे और कुछ चाहिये भी नहीं। तुम मेरे सर्वस्व हो। जो उचित समझती हो, करना। मेरी पूजाएँ स्वीकार करो"। हृदयपूर्वक दोनों ने प्रणाम किया और उठे।

मंदिर के प्रांगण में फैले पौधों से बचते हुए दोनों उत्तरी दिशा की ओर बढ़े। वहाँ तरह-तरह के पौधों के बीच में एक बड़ा पीपल का वृक्ष था।

कीर्तिसिंह उस वृक्ष को देखता रहा और फिर बोला "शक्ति, इस वृक्ष को देखो। यह वृक्ष शिव का प्रिय वृक्ष है। अवश्य ही हार को यहीं कहीं गाड़कर रखा होगा।"

"तुम शायद ठीक ही कह रहे हो। परंतु खोदें कैसे?" शक्तिसेना ने निराशा भरे स्वर में प्रश्न किया।

(सशेष)

दो स्वार्थी

विक्रमार्क अपनी हार माननेवालों में से नहीं था। वह धुन का पक्का था। फिर से वह पेड़ से के पास गया, लाश को उतारा और अपने कंधों पर डाल लिया। श्मशान की ओर यथावत् बढ़ता हुआ जाने लगा। तब शव के बेताल ने कहा "महाराज, तुम तो बहुत बड़े राजा हो। सुखी रहने की समस्त सामग्रियाँ तुम्हारे यहाँ हैं। परंतु पता नहीं, तुमने क्यों यह आफ़त मोल ली है। निद्रा-आहार का त्याग करके इस शव के पीछे क्यों पड गये हो ? क्यों अपने आप को इन कष्टों में जान-बूझकर डाल रहे हो। यह सब मेरी समझ के बाहर है। परंतु तुम्हें देखते हुए मुझे तुमपर बड़ी दया आ रही है। तुम तो जानते ही हो कि यह संसार स्वार्थियों से भरा पड़ा है। यहाँ हर कोई अपना उल्लू सीधा करना चाहता है। अपने लाभ ही को देखता है। क्या तुम समझते हो कि तुम्हारी निस्वार्थता की कोई प्रशंसा करेगा?

बेताल कथा

यौवन में पदार्पण करते-करते उसकी सुंदरता तथा उसकी तीक्षण बुद्धि की हर जगह प्रशंसा होने लगी। उससे विवाह करने के लिए कितने ही राजकुमार लालायित थे। उसे पत्नी के रूप में पाना वे अपना अहोभाग्य मानने लगे। महादत्त भी योग्य वर की तलाश में था। एक बार उसने चार राजकुमारों के चित्र अपनी पुत्री वैशाली के पास भेजा। उसकी इच्छा थी कि राजकुमारी उनमें से किसी को अपने पति के रूप में चुने।

वैशाली को उनमें से कोई भी योग्य नहीं लगा। उसने कहा "पिताश्री, मैं तो चाहती हूँ कि विशाल देश के होनेवाले राजा को तो सहज ही गुणवान, सुंदर, योग्य और धीर का होना आवश्यक है। इन चित्रों में चित्रित राजकुमारों में तो इनका अभाव दिखता है। इनमें कृत्रिमता अधिक और स्वाभाविकता कम दिख रही है।"

महाराज को अपनी पुत्री की टीका-टिप्पणियों पर आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह जानता था कि ये राजकुमार सहज रूप से गुणवान हैं, वीर हैं और इनकी पर्याप्त ख्याति है।

तुम्हारे त्याग का मूल्य आँकेगा? जब कि अनीति, पाप, अन्याय आदि दुर्गुणों का ही बोलबाला इस संसार में है, क्यों अपने आपको इन कष्टों में डाल रहे हो? तुमने तो रातों की नींद भुला दी, सुखमय जीवन को लात मार दी। आखिर ऐसा क्यों? भूलो मत कि स्वार्थी मनुष्य नीति के मार्ग से हटकर अनीति के मार्ग पर बेधड़क चला जा रहा है। उसे रोकना किसी के बस की बात नहीं। तुम्हें सावधान करने के लिए वैशाली और शिवचंद्र नामक दो स्वार्थियों की कहानी सुनाता हूँ। विश्राम करते हुए यह कहानी सुनो और अपना हठ छोड़ो। और उसने यों कहा "विशाल देश के राजा महादत्त की इकलौती संतान थी वैशाली। उसने उसे समस्त विद्याएँ सिखायीं।

विशाल देश के उत्तरी भाग के केसर पर्वतारण्य में एक राक्षसी थी, जो वहाँ के गिरिजनों को मारती थी और खाती थी। लोगों में हाहाकर मचा हुआ था। लोग भयभीत थे। गिरिजनों का मुखिया राजा के पास आया और कहा "महाराज, अपने कष्टों के बारे में कितना भी बताऊँ, कम है। मालूम नहीं, किस समय राक्षसी आ धमकेगी और हममें से किसी को

उठाकर खा जायेगी। खाने के पहले दो सवाल करती है और हमारे आदमी को खा जाती है''।

''तुम्हें क्या मालूम है कि उस राक्षसी के वे दो सवाल क्या हैं? महादत्त ने पूछा।

''उस राक्षसी के सवाल हमारे आदमियों की समझ में नहीं आये। पर वह तो स्पष्ट कहती रहती है कि जो मेरे दोनों सवालों का सही जवाब देगा, उसे छोड़ दूँगी।'' मुखिया ने कहा।

महाराज ने उसे आश्वासन देते हुए कहा ''तुम चिंतित ना हो। उस राक्षसी को मारने का प्रबंध मैं करूँगा। तुम लोग सावधान रहो''। यों कहकर उसने मुखिया को भेज दिया।

महाराज ने मंत्री से परामर्श किया। योजना के अनुसार घोषणा की गयी कि जो राक्षसी के प्रश्नों का सही उत्तर देगा और उसे ख़तम करेगा, उसे राज्य का एक भाग पुरस्कार में दिया जायेगा। रोज़ गुज़रते गये, किन्तु कोई भी इस ज़ोख़िम को उठाने के लिए आगे नहीं आया। राजा परेशान हो गया। उसकी समझ में नहीं आया कि इस विपत्ति से गिरिजनों को कैसे बचाऊँ। तब शिवचंद्र नामक एक युवक राजा की अनुमति पाने उसके पास आया। उसका दावा था कि मैं यह गुरुतर कार्य करने की क्षमता रखता हूँ।

''हमें मालूम नहीं कि राक्षसी किस प्रकार के सवाल पूछेगी? हम तो जानते भी हैं कि वह कितनी क्रूर और बलशाली है। बताओ कि किस विद्या में तुम निपुण हो?'' राजा ने शिवचंद्र से पूछा।

शिवचंद्र ने कहा ''महाराज, मैं कोई विद्या नहीं जानता। खेतों में काम करनेवाला, अपनी मेहनत पर विश्वास रखनेवाला साधारण नागरिक हूँ''।

राजा उसकी बात सुनकर झुंझला पड़ा और बोला ''विद्याओं से अनभिज्ञ हो, वीर भी नहीं हो, फिर भी राक्षसी के अंत करने का दंभ भरते हो। शायद राज्य पाने की लालच में आये हो। मेरी बात सुनो। चुपचाप लौट जाओ। अपनी जान क्यों बेकार खोते हो?''

शिवचंद्र ने विनयपूर्वक कहा ''अगर मैं जीत भी जाऊँ, तब भी राज्य - पालन मेरे बस की बात नहीं है। मैं इतना अक़्लमंद तो हूँ नहीं। राजन, किसी लालच में पडकर मैं यहाँ नहीं आया
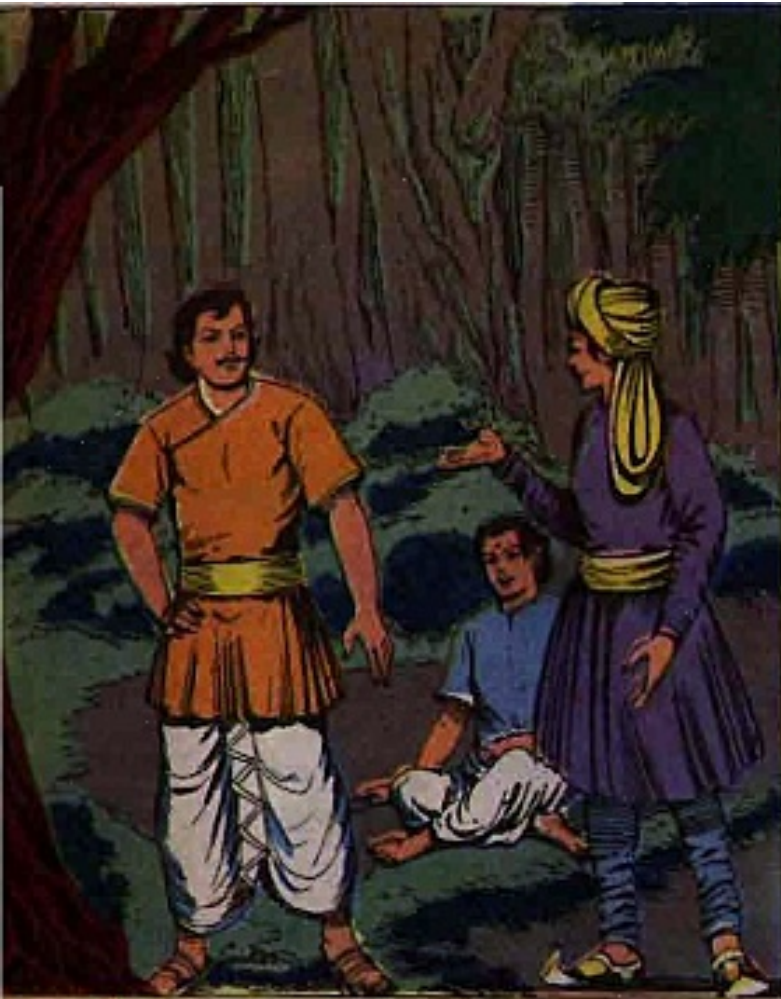
हूँ। मेरा लक्ष्य तो गिरिजनों की रक्षा है। मेरे ही गाँव के प्रकांड पंडित चंद्रस्वामी भी मेरे साथ आ रहे हैं। मेरा विश्वास कीजिये और मुझे राक्षस से निपटने की अनुमति दीजिये। मेरा तो यह अभिप्राय है कि किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए विद्या और वीरता की आवश्यकता कम है। आवश्यकता है धुन की। आवश्यकता है कार्य-सिद्धि का एकमात्र लक्ष्य''।

महादत्त ने देखा कि शिवचंद्र ईमानदार है, नीतिवान है और उसमें लक्ष्य की प्राप्ति की धुन है। उसने उसे अनुमति दी। शिवचंद्र सभा भवन के बाहर आया और पंडित चंद्रस्वामी से मिला उससे राजसभा की सारी बातें बतायीं।

राजा की अनुमति की बात सुनते ही चंद्रस्वामी का चेहरा फीका पड़ गया। उसने शिवचंद्र से कहा ''सुनो, मैं जंगल के सरहदों पर बैठूँगा। मेरे अंदर आने का कोई सवाल ही नहीं उठता''।

''ठीक है। जैसी तुम्हारी इच्छा। चलो, चलते हैं'' शिवचंद्र ने कहा। दोनों जंगल की ओर निकल पड़े। दुपहर होते-होते वे केसराराण्य के पास पहुँचे।

चंद्रस्वामी आकाश को छूते हुए उन लंबे-लंबे जंगली वृक्षों को देखकर बोला 'शिवचंद्र' अब मैं एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ाऊँगा। यहीं, अरण्य के इसी किनारे पर बैठा रहूँगा''। कहते हुए वह ज़मीन पर बैठ गया। इतने में एक युवक वहाँ आया और उसने अपना परिचय देते हुए कहा कि मेरा नाम विशालदत्त है। मैं यह देखने आया हूँ कि तुम राक्षस का अंत कैसे करोगे? तुम्हारे दोस्त के साथ मैं भी यहीं बैठूँगा''।

शिवचंद्र खुश होते हुए बोला ''मेरे मित्र का नाम चंद्रस्वामी है। प्रकांड पंडित है। राक्षस से किये जानेवाले प्रश्नों का समाधान देने में मेरी सहायता करने मेरे साथ आया हुआ है। अच्छा, अब मैं जंगल में प्रवेश करूँगा''।

शिवचंद्र ने जंगल में प्रवेश किया और बहुत दूर जाता रहा। तब पेड़ के पीछे से एक विकट अट्टहास सुनायी पड़ा। वह चांक पड़ा। सिर घुमाकर देखने की भी अवधि नहीं थी कि इतने में काली कलौटी उस राक्षसी ने उसे अपनी हथेली में ले लिया।

शिवचंद्र अब संभल गया। साहस बटोरा और उस राक्षसी को बखूबी देखा। राक्षसी समझती थी कि उसे देखते ही यह इन्सान डर जाएगा, चिल्लायेगा और प्राण की भिक्षा मांगेगा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। निर्भीक शिवचंद्र को वह आश्चर्य से देखती रही।

एक क्षण रुककर उस राक्षसी ने कहा "भयंकर मेरे आकार को देखकर भी तुम भयभीत नहीं हो? कहीं तुम मूर्ख तो नहीं हो? कहीं अपनी असहायता पर चुप्पी साधे बैठे तो नहीं हो। तुम्हारे बुद्धि-कौशल और वीरता पर मुझे संदेह हो रहा है। खैर, तुम जो भी हो, तुमसे मुझे क्या लेना-देना है। मेरे सवालों का जवाब दो"।

शिवचंद्र ने बिना किसी झिझक के कहा "बोलो, क्या सवाल है?"

"भूमि पर दिखनेवाला प्रत्यक्ष देव कौन है? राक्षसी ने पूछा। "बस यही एक सवाल है? या और कोई सवाल है?" शिवचंद्र ने पूछा।

"एक और सवाल है। अपराधी को दंड देनेवाला अपनी लाचारी पर पछता रहा है, दुखी हो रहा है। बोलो, वह कौन है?" राक्षसी का यह दूसरा सवाल था।

"जवाब देने के पहले मेरी एक इच्छा है।" शिवचंद्र ने कहा। राक्षसी चकित होती हुई बोली "बोलो, तुम्हारी वह इच्छा क्या है?"

"मेरे दोनों जिगरी दोस्त जंगल के बाहर बैठे हुए हैं। एक बार उन्हें देख आऊंगा और उनसे बिदा लेकर फिर तुम्हारे सवाल का जवाब दूंगा। अगर मेरे जवाब तुम्हें सही लगे, तभी तो मैं उनको फिर से देख पाऊंगा।" शिवचंद्र ने कहा।

शिवचंद्र की निर्भीकता को देखकर राक्षसी को लगा कि इसकी बात मान ली जाए। उसे लगा कि अपने प्राण बचाने के लिए यह कोई बहाना बना नहीं रहा है। उसने कहा "ईमानदार आदमी में हिम्मत होती है, धोखेबाज़ हमेशा कायर होते हैं। मैं तेरा विश्वास करती हूं। तुम्हें जाने की अनुमति दे रही हूं।" राक्षसी ने दया दिखाते हुए कहा।

शिवचंद्र दौड़ा - दौड़ा गया और चंद्रस्वामी व विशालदत्त से मिला। उन्हें राक्षस के सवाल

बताये और चंद्रस्वामी से कहा "तुरंत बताओ, इनके जवाब क्या हैं?"

"भूमि पर दिखनेवाला प्रत्यक्ष दैव जन्म देनेवाली माँ है" चंद्रस्वामी ने कहा। "अच्छा, तो दूसरा जवाब क्या है" शिवचंद्र ने आतुरता से पूछा।

"दूसरा" चंद्रस्वामी थोड़ी देर सोचता रहा और फिर बोला "अपराधी को दंड देते हुए अपनी लाचारी पर पछतानेवाला राजा हो सकता है" चंद्रस्वामी के उत्तर में अस्पष्टता थी, संदेह था।

"नहीं नहीं" विशालदत्त ने दखल देते हुए कहा "वह भी जन्म देनेवाली माँ ही है। अपने बच्चे की भलाई के लिए वह दंड देती है। उसे इस बात का दुख भी है बेटा अपराधी है और अपने ही बेटे को उस अपराध के लिए दंड देना पड़ रहा है। उसे इस लाचारी पर अत्यंत दुख होता है"।

शिवचंद्र तत्क्षण ही वहाँ से लौटा और राक्षसी के सामने खड़ा हो गया। राक्षसी ने प्रशंसा भरी दृष्टि से उसे देखा और कहा "तुम आ गये। मैं जानती थी, तुम अवश्य आ जाओगे।"

शिवचंद्र ने राक्षसी के प्रश्नों का उत्तर दिया। उन्हें सुनते हुए राक्षसी के मुखड़े पर असीम आनंद फैल गया। जैसे ही उसका कहना समाप्त हुआ, राक्षसी गायब हो गयी और उसकी जगह पर एक देवतास्त्री प्रत्यक्ष हुई।

आनंद और आश्चर्य से देखते हुए शिवचंद्र को देखकर मुस्कुराती हुई उसने कहा "शिवचंद्र, मैं विद्युत्प्रभा नामक यक्षिणी हूँ। शापग्रस्त होकर राक्षसी बनी हूँ। ठीक सौ साल पहले पुंडरीक नामक एक महर्षि रहा करते थे। पत्नी के मरने के बाद तीन साल की अपनी पुत्री की देखभाल बड़े प्यार से करने लगे। जब एक बार भूमि पर आयी, तब उनकी सुंदरता पर मैं मुग्ध हो गयी और मैंने उनसे विनती की कि मुझसे शादी कीजिये। उन्होंने मेरी विनती अस्वीकार कर दी। उनकी बेटी को डरा - धमकाकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मैं काली - कलौटी रंगवाली राक्षसी बनी। पौधों के बीच में क्रीडाएँ करती हुई उनकी बच्ची को मैंने उठाया। मुझे देखते ही वह बच्ची भयकंपित हो गयी और एकदम चिल्लाकर मेरे हाथों से ज़मीन पर फिसल गयी।

पुत्री का चीत्कार सुनकर पुंडरीक दौड़े-दौड़े

आये। वे क्रोधित हो गये और उन्होंने मुझे शाप दिया कि जिस आकार से तुमने मेरी पुत्री को डराया है, वह आकार तुम्हारा शाश्वत आकार होगा। मैं उस महर्षि के पैरों गिरी और अपने शाप - विमोचन की प्रार्थना की।

मेरी प्रार्थना से महर्षि का हृदय पिघला और उन्होंने कहा "विद्युत्प्रभा, स्त्री का सहज लालित्य तुमने खो डाला है। जब संतान अपराध करती है तो माँ का हृदय विलाप करता है। वह अपने आप तीव्र रूप से दुखी होती है। हृदय निर्मल, स्निग्ध तथा सुकोमल होता है। माँ इस सृष्टि में दिखायी देनेवाली प्रत्यक्ष परमेश्वरी है। हाँ तुम्हारे शाप-विमोचन का एक मार्ग है। सुनो। सौ सालों तक तुम इसी रूप में अपना जीवन गुज़ारोगी। उसके बाद मैंने तुमसे जो कहा, उसे दो प्रश्नों के रूप में जब किसी से पूछोगी और उसका जो सही उत्तर दे पायेगा, उसके दर्शन से तुम्हारे पाप धुल जाएँगे, तुम इस शाप से मुक्त हो जाओगी।" कहते हुए वे दोनों प्रश्न तथा उनके उत्तर भी उन्होंने मुझसे बताया।

चकित हो, सुनते हुए शिवचंद्र ने उसे प्रणाम किया और कहा "पर माते, मेरे उत्तर मेरे अपने नहीं हैं। मैं बिलकुल ही अनपढ़ हूँ"।

उसकी बातों पर विद्युत्प्रभा हँसी और बोली "यक्षिणी हूँ मैं। क्या मैं इतना भी नहीं जानती?" उसने अपना दायाँ हाथ शिवचंद्र के सिर पर रखा और कहा "पुत्र शिवचंद्र, समस्त शास्त्रों में तुम पारंगत हो जाओगे। तुमसे टक्कर लेनेवाला कोई ना होगा। अणिमा, महिमा आदि यक्षों की सहज विद्याएँ हैं। ये विद्याएँ भी तुम्हें लब्ध होंगी।" उसे यों आशीर्वाद देकर अंतर्धान हो गयी।

आनंद में डूबता हुआ शिवचंद्र लौटा और उसने सारा वृत्तांत चंद्रस्वामी तथा विशालदत्त को सुनाया।

चंद्रस्वामी ने कहा "यक्षिणी से वरदान प्राप्त वीर हो तुम, अच्छा, मैं अब चला" कहता हुआ नाराज़ी से वहाँ से चला गया।

शिवचंद्र हतप्रभ होकर खड़ा रह गया। तब विशालदत्त ने उससे कहा "वह स्वार्थी है, ईर्ष्यालु है। दुखी न होना" कहते हुए उसने अपने वस्त्रों में से एक हार निकाला और उसके गले में

पहनाया। कहा "यह चंदन का हार है। साधारण लगता है, किन्तु अपनी सुगंधि से दिशाओं को सुगंधित कर देता है। तुममें और इस हार में समानता है। दोनों में एक ही गुण है।"

शिवचंद्र एक क्षण मौन रह गया और फिर बोला "चंद्रस्वामी की ईर्ष्या का कारण तो मैं जानता हूँ। किन्तु तुम्हारे आदर का अर्थ समझने में अशक्त हूँ राजकुमारी।" विशालदत्त के वेष में आयी हुई वैशाली लज्जित होती हुई शिवचंद्र से विदा लेकर वहाँ से चल पड़ी। शिवचंद्र राजधानी पहुँचा। महाराज से मिला। सारा वृत्तांत सुनाया। महाराज ने उसका सम्मान किया और वैशाली से विवाह रचाया।

बेताल ने यह कहानी सुनाने के बाद विक्रमार्क से पूछा "राजन्, वैशाली ने विख्यात राजकुमारों का तिरस्कार किया। जैसे ही शिवचंद्र को यक्षिणी के वर प्राप्त हुए, उसने उससे विवाह कर लिया। यह उसका स्वार्थ नहीं तो क्या है? अपनी त्रुटि छिपाने के लिए उसने चंद्रस्वामी पर स्वार्थी व ईर्ष्यालु का आरोप लगाया। शिवचंद्र वैशाली के स्वार्थ को भी अपने वरों की वजह से जान चुका होगा। फिर भी उसने उससे विवाह किया। क्योंकि उससे विवाह करने से वह राजा बन सकता है। यह भी तो केवल स्वार्थ ही तो है। मेरे इन संदेहों का निवारण जानकर भी नहीं करोगे तो तुम्हारा सिर फट जायेगा।"

विक्रमार्क ने उत्तर दिया "वैशाली की बातों से पता लगता है कि वह व्यक्ति का बाह्य सौंदर्य नहीं बल्कि आंतरिक सौंदर्य को महत्व देती है। शिवचंद्र ने साधारण मानवों की रक्षा के लिए अपने प्राणें की भी परवाह नहीं की वह संयोगवश यक्षिणी के आशीर्वाद व वरों का पात्र बना। ऐसे व्यक्ति को कोई भी नारी चाहेगी। शिवचंद्र ने वैशाली के सद्गुणों को जाना और उससे विवाह किया। अत: उन्हें स्वार्थी कहना तुम्हारे अज्ञान का सूचक है।"

राजा का मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया।

आधार- तुलसी तथा सुचित्रा की रचना

चन्दामामा परिशिष्ट-७०

सागवान

घर के मुखद्वार, दरवाजे, खिड़कियाँ, बेंचें, कुर्सियाँ आदि जिस लकड़ी से बनती हैं, वह है सागवान। यह घरों के लिए उपयोगी वस्तुओं को बनाने के काम में आनेवाली श्रेष्ठ लकड़ी है। लाटिन भाषा में इसे 'टेक्टोना ग्रांडिस' कहते हैं। 'टेक्टान' नामक ग्रीक शब्द का रूपांतर है। 'टेक्टान' का मतलब है बढ़ई। 'ग्रांडिस' का मतलब है, बड़ा और मोटा। पेड़ों में से यह पेड़ सबसे ऊँचा है और मोटा है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा। बड़ा हुआ सागवान पेड़ कम से कम ३० से ६० मीटर तक की ऊँचाई का होता है।

पेड़ के चारों ओर टहनियाँ होती हैं। एक-एक की लंबाई ६० सें.मी. और ३० सें.मी. की चौड़ाई होती है। पत्ते एक दूसरे के सामने होते हैं। पौधों की अवस्था में इनके पत्ते और बड़े होते हैं। एक-एक पत्ता एक छतरी जैसा होता है। पत्तों का ऊपरी भाग खुरदरा होता है। नीचे का भाग लाल बैंगनी रंग में मुलायम होता है। ऋतुओं में छोटे-छोटे सफेद फूल टहनियों के कोनों में गुच्छों में विकासित होते हैं। नवंबर-दिसंबर महीनों के बीच में इसके पत्ते झड़ जाते हैं और ये पेड़ सूखी लकड़ी जैसे लगने लगते हैं; खाली-खाली लगने लगते हैं।

सागवान की लकड़ी श्रेष्ठ लकड़ी मानी जाती है। यह लकड़ी बहुत ही मज़बूत होती है। इसीलिए रेलगाड़ी की तैयारी में तथा जहाजों को बनाने में इसका अधिक उपयोग होता है। पुलों के निर्माण में तथा वाहनों के चक्रों के लिए भी इसी लकड़ी का इस्तेमाल होता है। महाराष्ट्र की कार्ली गुफाएँ इस सागवान की लकड़ी से ढकी गयी हैं। दो हजार साल गुजर गये, फिर भी यह अब भी बिल्कुल सुरक्षित है; जैसे के तैसे है। सागावान की श्रेष्ठता का यह प्रमाण है।

उत्तर भारत के सागवानों की लकड़ी से केरल और कर्नाटक की सागवानों की लकड़ी श्रेष्ठ मानी जाती है। इससे भी श्रेष्ठ है बर्मा सागवान की लकड़ी।

सुप्रसिद्ध धर्म-ग्रंथ

जेंद अवेस्ता

सातवीं शताब्दी में कुछ पारसी पर्शिया और ईरान से भारत आये। उस दिन से वे यहीं बस गये। वे इसी देश को अपनी मातृभूमि मानते रहे। इस देश की उन्नति व विकास में उन्होंने अपूर्व योगदान दिया। यद्यपि ये अल्प संख्यक हैं, किन्तु देश-भर में यहां-वहां बस गये हैं।

जोरास्टर (जरतुश्त) सुप्रसिद्ध बुद्धिमान व प्रवक्ता थे। पारसी उन्हीं से बोधित जोरास्ट्रियन धर्म के अनुयायी हैं। इतिहासकारों का अभिप्राय है कि ईसा के एक हजार सालों पहले ही इनका जन्म हुआ था। जब एक पर्वत पर वे बैठकर ध्यान मग्न थे, एकांत जीवन बिता रहे थे, तब पर्वत अग्नि से जल उठा। वे वहां से निकल पड़े। प्रजा को सन्मार्ग दिखाने में अपना जीवन-यापन किया। प्रजा को उन्होंने जीवन-लक्ष्य दर्शाया।

जोरास्टर के समस्त बोध 'जेन्दावेस्ता' में सुरक्षित हैं। प्रारंभ काल में इक्कीस अवेस्ता थे। कालक्रमानुसार उनकी संख्या घट गयी।

कहा जाता है कि जोरास्टर जब जन्मे, तब उनके चारों तरफ एक विचित्र कांति व्याप्त हुई। शिशु की रुलाई नहीं बल्कि हँसी सुनायी पड़ी। शिशु-अवस्था में वे हँसते ही रहते थे। अगर कोई पूछे तो वे कहते "अच्छाई सोचो और अच्छाई को ही आचरण में लाओ। यह अच्छाई भगवान प्रदत्त है। अगर तुम भी इस अच्छाई को औरों में बाँटोगे तो मेरी ही तरह हँसते हुए संतुलनमय जीवन गुजार सकते हो"। संपूर्ण देश में जब घोर अकाल पड़ा तब उनके माता-पिता ने अपनी समस्त संपत्ति लोगों में बाँट दी। उन्हें इस बात पर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने सोचा कि मनुष्य-जीवन में ऐसे अवसर भाग्य से ही आते हैं। जोरास्टर जब सत्य का अन्वेषण करने निकले, तब उनके पिता ने अपनी संपत्ति उन्हें देनी चाही, आग्रह भी किया, परंतु उन्होंने मना किया। उन्होंने केवल पिता की कमर में बंधी बेल्ट ही ली। उन्होंने कहा कि यह मेरे परिवार का स्मृति-चिह्न है। वे एक पर्वत पर दस साल रहे। उन्होंने वहां नाना प्रकार की यातनाएं सहीं। ध्यानमग्न होकर वे सत्य के अन्वेषण के कार्य पर लगे रहे। आखिर 'अहुरा मज्दा' (दिव्य कांति) से उन्होंने वार्तालाप किया और अपने संदेहों के समाधान पाये। दिव्य कांति ने संक्षेप में जो श्रेष्ठ विचार, कार्य तथा मार्ग सुझाया, उन्हें उन्होंने अपना सिद्धांत माना और उस सिद्धांत का प्रचार जनता में किया। उन्हें सन्मार्ग पर चलने का मार्ग दर्शाया।

पानी के प्रवाह में बह जाने के कारण अब एकमात्र ग्रंथ तथा अन्य ग्रंथों के कुछ भाग मात्र प्राप्त हैं। 'जेंदअवेस्ता' और हमारे वेदों की सूक्तियों में साम्य है, जो अवश्य ही एक विशिष्टता है।

'अहुरा मज्दा' कांति और सत्य के अधिपति हैं। अह्रिमान अंधकार और दुष्टता के नेता हैं। इन दोनों में सदा युद्ध होता ही रहता है। 'अवेस्ता' का यह दावा है कि अंत में दुष्ट शक्तियों का नाश होगा और शिष्ट शक्तियाँ विजयी होंगी।

"यद्यपि मानव 'अर्मज्द' की सृष्टि है, फिर भी उसपर दुष्ट शक्तियों का भी प्रभाव होता है। सत्य के लिए जो मानव पवित्र जीवन बिताने कटिबद्ध होगा, अवश्य ही उसकी जीत होगी। यह जीत सत्य और प्रकाश की है।" जोराष्टर ने अपनी सूक्तियों में इन बातों पर जोर देते हुए कहा है।

उनकी कुछ और सूक्तियाँ यों हैं :-

"मनुष्य अच्छे काम करेगा तो उसे दिव्यत्व प्राप्त होगा। मनुष्य को सत्य के लिए जीवन भर जूझते रहना होगा और इस दिशा में उसके प्रयत्न ही उसे भगवान तक ले जा पाएँगे।"

"मनुष्य विश्वासपात्र रहे और सत्य से उसका मार्ग कभी विचलित ना हो तो उसे उपलब्ध होनेवाला फल भी महत्तर होगा।"

"दैवप्रणाली तथा प्रयोजन को सदा ध्यान में रखना चाहिये। उन्हीं का मनन करना अत्यावश्यक है"।

"यह जानते हुए भी कि न्याय यही है, उसका आचरण ना कर पाना कायरता है।"

क्या तुम जानते हो?

१. गल्फ देशों में से सबसे छोटा देश कौन-सा है?
२. हमारे राष्ट्रीय चिह्न में तीन पशुओं के चित्र हैं। वे कौन हैं?
३. बच्चों के आनंद के लिए जो परिश्रम करते हैं, उनको हर साल पोलैंड देश के बच्चे पुरस्कार देते हैं। उस पुरस्कार का क्या नाम है? उसे पानेवाला एकमात्र भारतीय कौन है?
४. 'मेसापोटेमिया' का अर्थ है, दो नदियों के बीच का प्रदेश। वह किन नदियों के बीच में है? उसका वर्तमान नाम क्या है?
५. भारत का प्रथम व्योमगामी कौन है?
६. साधारणतया बाँसुरी में कितने छेद होते हैं?
७. चर्नोबिल की दुर्घटना कब घटी?
८. बचपन में झांसी बाई का एक दूसरा नाम था। वह क्या था?
९. 'प्रेशर कुकर' के आविष्कारक कौन हैं?
१०. संसार के देशों की चौड़ाई की बराबरी में हमारे देश का कितना स्थान है?
११. एक ही परिवार के चार लोगों को नोबेल पुरस्कार मिला। वह परिवार कौन-सा है?
१२. हमारे राष्ट्रीय झंडे में तीन रंगों को किन्होंने सुझाया, वे कौन हैं?
१३. रक्त की एक बूंद, शरीर भर प्रवाहित होकर आये, इसके लिए कितना समय लगता है?
१४. अंटार्कटिका में हमारे देश का प्रबंध किया गया प्रथम स्थावर कौन-सा है?
१५. काजू में अधिक पाया जानेवाला विटामिन क्या है?
१६. अंग्रेजी में प्रकाशित प्रथम बच्चों की पत्रिका का नाम क्या है?

उत्तर

१. बहरीन।
२. सिंह, घोड़ा, बैल।
३. आर्डर आफ स्माइल, कार्टूनिस्ट शंकर, (के. शंकर पिल्लै, 'चिल्ड्रन वर्ल्ड' के संपादक)।
४. यूफ्रेटस, टैग्रिस, इराक।
५. राकेश शर्मा।
६. आठ।
७. अप्रैल, २६, १९८६।
८. मणिकर्णिका।
९. राबर्ट बोयेल।
१०. सातवाँ।
११. क्यूरीज, मेरी क्यूरी, पति पीर क्यूरी, बेटी एरीन क्यूरी।
१२. पिंगलि वेंकय्या।
१३. बीस मिनिट।
१४. दक्षिण गंगोत्री।
१५. सी. विटमिन।
१६. दी लिल्लीपुटियन।

चोरी

सुदामा दरिद्र था पर उसके दादा-परदादा संपत्तिवान थे। उसके पिता ने व्यापार में सब कुछ खो दिया। इससे से दिल का दौरा पड़ा और मृत्यु हो गयी। तब सुदामा के चार बच्चे थे।

अपने ही गाँव में काम करने की उसकी इच्छा नहीं थी। वह वहाँ रहकर अपमानित होना नहीं चाहता था। बहुत ही दूर के गाँव में अपनी पत्नी और बच्चों के में साथ चला गया। उसने बड़ी मेहनत की। रात-दिन काम करता रहा। लेकिन उसकी आमदनी परिवार चलाने के लिए पर्याप्त नहीं होती थी। परिवार के लिए आवश्यक चीजें भी खरीदना उसके लिए कठिन हो गया था।

उसने गाँव के बहुत से लोगों से थोड़ा-बहुत कर्ज भी लिया। कर्ज चुका नहीं पाया, इसलिए गाँव में उसे कर्ज भी नहीं मिलता था। बच्चे भूख से तड़पते थे। उन्हें देखकर उसे बड़ा दुख होता था। उनकी भूख मिटाने की उसकी सारी कोशिशें बेकार गयीं। एक दिन शाम को वह एक संपन्न व्यक्ति के घर के सामने से गुज़रने लगा।

उस संपन्न व्यक्ति के घर में विवाह हो रहा था। लोगों की भीड़ थी। रसोइये तरह-तरह के पकवान बना रहे थे। सब लोग अपने - अपने कामों में व्यस्त थे। किसी को यह देखने की फ़ुरसत भी नहीं थी कि कौन आ रहा है और कौन जा रहा है। वर - वधुवाले अपने -अपने लोगों की आवभगत में लगे हुए थे।

सुदामा रुका और उस जगह को गौर से देखने लगा, जहाँ पकवान बन रहे थे। सब लोग भोजन करने में व्यस्त थे। उसने एक बार अपनी मैली धोती और फटा कुर्ता देख लिया। इस स्थिति में वह अतिथियों के साथ खाना नहीं खा सकता था। तब करे क्या? मौका पाकर वह भोजनशाला में घुस गया।

श्यामसुंदर

वहाँ से उसने एक पकवान लिया और मुंह में रखनेवाला ही था कि उसने देखा, एक व्यक्ति उसी तरफ़ आ रहा है। तुरंत वह एक बड़े बरतन के पीछे छिप गया।

जो भोजनशाला में आयी, वह औरत थी। तीस - पैंतीस की उम्र की थी, मोटी और गोरी थी। उसे देखकर सुदामा को लगा कि वह थोड़ी घबराहट में है। इतने में दूसरी तरफ़ से आवाज़ आयी, "कांता, आते - आते बैंगन की तरकारी लेती आना"।

"लाऊँगी," कांता ने कांपते हुए स्वर में जवाब दिया। फिर उसने अपने कपड़ों से कोई चीज निकाली और जलते हुए चूल्हे के पास आयी, जिसपर एक बरतन रखा हुआ था।

सुदामा यह सब कुछ देख रहा था। उसने सोचा, कहीं यह औरत उस बरतन में विष तो नहीं मिला रही है।

कांता ने चारों ओर फिर से एक बार नज़र दौड़ायी और जब उसे लगा कि कोई नहीं देख रहा है तो उसने वह चीज़ बरतन में डाल दी। सुदामा ने वह वस्तु देख ली। वह सोने की जंजीर थी।

सुदामा की समझ में नहीं आया कि उस सोने की जंजीर को उसने उस बरतन में क्यों डाला? भूख की वजह से वह इस स्थिति में भी नहीं था कि उसके बारे में सोचे-विचारे।

सुदामा ने कुछ रोटियाँ लीं, और खाने वाला ही था कि किसी ने देख लिया और चोर चोर कहकर जोर ज़ोर से चिल्लाने लगा।

डर के मारे रोटियाँ सुदामा के हाथ से गिर गयीं। उसने भाग जाना चाहा कि इतने में चार लोगों ने आकर उसे पकड़ लिया और उसे घर के यजमान के पास ले गये।

उन लोगों ने यजमान से कहा "रात में चोर को पकड़ना आसान बात है, लेकिन दिन में चोर को पकड़ना बहुत ही मुश्किल का काम है। फिर भी हमने दिन दहाड़े चोरी करते हुए इस चोर को पकड़ लिया है। हमने बड़ी ही चतुरता से इसके लिए जाल बिछाया और इसे फँसा लिया। शादियों के समय तरह-तरह के चोर चोरी करने की ताक में रहते है। लेकिन यह तो महाचोर लगता है।" वे सुदामा को पकड़कर महसूस कर रहे थे, मानों

आकाश के तारे तोड़ ले आये हों। यजमान की प्रशंसा पाने के लिए बात बढ़ा चढ़ाकर कहे जा रहे थे।

यजमान व्यंग से भरी हँसी हँसा और बोला "और बताने की जरूरत नहीं। इसे शादी का चोर कहें तो ठीक होगा। शादी के समय ऐसे चोर बहुत पाये जाते हैं। हम अपने कामों में व्यस्त रहते हैं। पता भी नहीं चल पाता, कौन मेहमान है और कौन नहीं। मौका पाकर ये चुपके चोरी करते हैं। इस चोर को चोरी की सजा मिलनी ही चाहिये।"

यजमान ने जब सुदामा को चोर कहा तो सुदामा नारज हो गया। उसके आत्म - सम्मान को धक्का लगा। उसने कहा "महाशय, मैं कोई चोर नहीं हूँ। मेरे चार बच्चे हैं। मैं बेरोजगार हूँ। भूख से तड़पता हुआ एक दरिद्र हूँ। आज तक तो इस भूख पर विजय पाने की चेष्टाएँ करता रहा। लेकिन आज भूख ने मुझपर विजय पायी और मुझे आपके भोजनालय में ले आयी। असली चोर तो भूख है।"

यजमान सुदामा की हँसी उड़ाता हुआ बोला "चोर चोर ही है। चाहे वह तुम हो या तुम्हारी भूख। चोरी के अपराध में तुम्हें दंड तो मिलना ही चाहिये"।

उसने अपने नौकरों को आदेश दिया कि वे उसे अपने कमरे में ले आयें। वे उसे यजमान के कमरे में ले आये। यजमान ने सुदामा को बैठने को कहा और नौकरों से तरह-तरह के पकवान
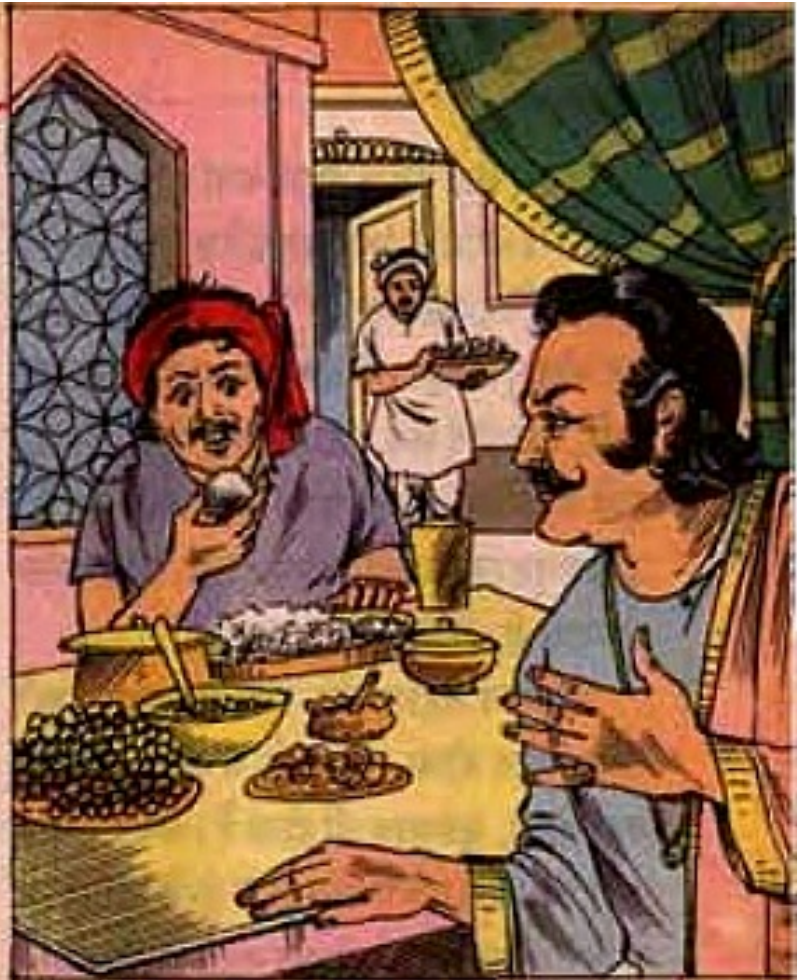
मंगवाये। सुदामा को खाने के लिये कहा गया। उसने पेट भर खाया। खाता रहा और रोता रहा। फिर यजमान ने उससे पूछा "जानते हो, मैं ने तुम्हें क्यों खिलाया था?"

सुदामा ने नहीं के अर्थ में सर हिलाया। "तुमने तो सुना ही होगा कि भोजन परब्रह्म स्वरूप है। मनुष्य के जीवन में ऐसी दीन परिस्थिति कभी भी नहीं आनी चाहिये कि उसे चोरी से खाने की नौबत आये। तुम्हें देखते हुए लगता तो नहीं है कि तुम पक्के चोर हो। बताओ कि चोरी करने के लिए क्यों इस प्रकार प्रेरित हुए हो?"

सुदामा ने आप पर बीती पूरी कहानी सुनायी। कैसे उसके पिता ने व्यापार में सब कुछ

खो दिया, कैसे वह कर्ज़दार बना और क्यों अन्न की चोरी करने के लिए वह प्रेरित हुआ आदि - आदि। फिर उसने कहा "मुझे अपनी दरिद्रता पर कोई दुख नहीं। मैं अपने पिता से भी नाराज़ नहीं, जिन्होंने सब कुछ व्यापार में खो दिया। मुझे तो चिंता अपनी पत्नी और बच्चों की है। उन्हें संतुष्ट रखना मेरा कर्तव्य है। हाँ, चोरी करना अपराध है, लेकिन मैं विवश हूँ।"

यजमान सहानुभूति दिखाता हुआ गहरी साँस लेकर बोला "व्यापार में लाभ ही लाभ नहीं होता, नुकसान भी होता है। अब मैं समझ गया कि किन परिस्थितियों ने तुम्हें चोर बनने से विवश कर दिया? तुम्हारे बच्चों के चोर बनने की गुंजाइश है। अपनी पत्नी और बच्चों के लिए भी खाना लेते जाओ। तुम्हें नौकरी देने का मैंने निश्चय किया है।"

सुदामा ने उसके पैरों का स्पर्श किया और कहा "जन्म-भर आपका आभारी रहूँगा। आपकी कृपा से मैंने पेट भर खाया है। परंतु आपने मुझसे पूछा नहीं है कि शादी के ये पकवान रुचिकर हैं अथवा नहीं?"

सुदामा की बातों से यजमान को संदेह हुआ और भौंहें चढ़ाते हुए उससे पूछा "हाँ, हाँ, पूछना तो भूल ही गया। बोलो, खाना कैसे लगा?"

"खाना तो बढ़िया है। मुख्यतया सोने की खीर तो बहुत ही स्वादिष्ट है"। सुदामा ने कहा।

"सोने की खीर! जो कहना है, साफ़-साफ़ कहो।" यजमान ने आतुर हो उससे पूछा।

सुदामा ने वह सब बताया, जिसे उसने भोजनालय में अपनी आँखों देखा था। यजमान ने बरतन से सोने की ज़ंजीर बाहर निकलवायी। वह दुल्हन का गहना था। कांता को बुलाकर डराया, धमकाया तो उसने सच उगल दिया।

भूख के मारे चोरी करते हुए पकड़े गये सुदामा के प्रति यजमान के हृदय में सहानुभूति पैदा हो गयी। उसी के कारण तो गहना मिल गया है। चोर को पकड़वाकर उसने बहुत ही लाभदायक काम किया है।

अपने वचन के अनुसार उसने सुदामा को अच्छी नौकरी दी।

पिता की सलाह

गोविंद की कितनी ही जिम्मेदारियाँ हैं। पिता की तबीयत में सुधार लाना हो तो चिकित्सा करानी होगी। माँ को रेशमी साड़ियाँ पहननेकी बड़ी चाह है। उसकी चाहत भी पूरी करनी है। दो बहनों की शादी करानी है। घर उजड़ चुका है, उसकी मरम्मत करवानी है।

इतनी जिम्मेदारियाँ निभानी होंतो जायदाद चाहिये, धन चाहिये। उसके पास तो ये हैं नहीं। अक्लमंदी है, विचार हैं, लेकिन दुनियादारी बिल्कुल नहीं जानता, लोक-ज्ञानका अभाव है उसमें। हद से ज्यादा अच्छा है। अच्छे आदमी की अक्लमंदी दूसरों के उपयोग में आती है, स्वयं के काम में नहीं आती।

बहुत-से लोगों ने उसे सुझाया कि कैसे भी हो, धन कमाओ, धनवान बनो। किन्तु उसके पिता सदा उससे कहा करते हैं "बेटे, जो भी हो, अच्छाई मत छोड़ना। कष्ट सहो, तकलीफों का सामना करो, पर अच्छाई मत छोड़ो। असली आनंद तो अच्छाई से ही मिलता है"।

परिवार संभालना उसके लिए मुश्किल हो गया। काम की तलाश में वह शहर निकल पड़ा। रास्ते में बड़ा जंगल पड़ता है। बहुत दूर चलने के बाद वह थक गया और एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा।

पुराने ज़माने से एक भूत उस पेड़ पर रह रहा है। किसी का साथ ना होने के कारण वह भी बहुत ही अकेलापन महसूस कर रहा है। गोविंद को देखते ही वह नीचे कूद पड़ा। डरते हुए गोविंद को उसने धीरज दिया और उसके बारे में सारी जानकारी प्राप्त की। उसने गोविंद से कहा "मुझसे बातें करते रहो। मेरा मनोरंजन करो। मुझे अपनी बातों से खुश करो। तुम्हें शहर जाने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हें जितना धन चाहिये, मैं दूंगा"।

गोविंद ने साहस बटोरा और भूत को एक महाचोर की कथा सुनायी। भूत को बड़ा आनंद हुआ और उसने कहा "तुम यहीं रहो, मेरा साथी बनकर रहो। तुम्हारी बात करने की रीति, कहानी सुनाने की पद्धति मुझे बहुत अच्छी लगी है।"

गोविंद ने कहा "मैं अवश्य ही तुम्हारे ही साथ रहता। किन्तु मैं अपनी जिम्मेदारियों का क्या करूं?"

भूत ने थैली भर की सोने की अशर्फियां देते हुए उससे कहा "जाओ और अपनी जिम्मेदारियाँ निभाकर जल्दी लौटो। तुम्हारे बिना मुझसे अकेले रहा नहीं जाता"।

गोविंद घर लौटा। अपने पिता की चिकित्सा करवायी। माँ के लिए रेशमी साड़ियाँ खरीदीं। उजड़े घर की मरम्मत करवायी। तीन एकड़ खेत भी खरीदा। इतना सब कुछ करने के बाद उसे भूत की याद आयी और जंगल निकल पड़ा।

वहाँ एक सप्ताह रहा। उसने भूत को राजा और रानी की मनोहर कहानियाँ सुनायीं। वह जब तक था, भूत खुशी से फूला ना समाता था। जब गोविंद ने फिर से जाने की बात कही तो वह दुखी हो गया। उदासी से भरे स्वर में उसने कहा "क्या तुम शाश्वत रूप से मेरे ही संग नहीं रह सकते?"

गोविंद ने कहा "बहनों की शादी करनी है। माँ-बाप सदा सुखी रहें, इसका प्रबंध भी करना है। तुम्हीं बताओ, अपनी जिम्मेदारियाँ छोड़कर भला मैं तुम्हारे साथ कैसे रह सकता हूँ?"

भूत ने इस बार दुगुना सोना देते हुए कहा

"अच्छा तुम जाओ। अपनी सारी जिम्मेदारियाँ निभाकर जल्दी लौटो"।

गोविंद घर गया। फिर से खेत खरीदा। बहनों की शादी करायी। जब उसे विश्वास हो गया कि माँ-बाप की देखभाल वे अच्छी तरह से करेंगे तो उसे बेहद खुशी हुई। अब केवल बाकी है भूत की इच्छा की पूर्ति।

गोविंद ने भूत के बारे में खूब सोचा-विचारा। उसे लगा कि जब तक वह मानव बनकर रहेगा, तब तक उसका मन अपने आदमियों की ही तरफ झुका रहेगा। इसलिए उसने सोचा कि स्वयं भूत बन जाऊँगा तो सदा उसी के साथ रह पाऊँगा। परिवार को अब उसकी ज़रूरत नहीं है। वह इस निर्णय पर आया कि जिस भूत ने उसकी इतनी मदद पहुँचायी है, उसके साथ शाश्वत रूप से रहना हो तो एक ही उपाय है और वह है आत्महत्या।

वह इस निर्णय पर भी आया कि गाँव के पहाड़ पर से कूदूँगा और मर जाऊँगा। वह फौरन घर से निकल पड़ा।

जब वह पहाड़ की चोटी पर पहुँचा, तब वहाँ उसने एक सुन्दर युवती को देखा और उसे देखता ही रहा।

उस युवती का नाम है सरला। उसकी माँ उसके बचपन में ही मर गयी तो उसके पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ ने उसे सताया। उसे अनेक कष्ट झेलने पड़े। नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ीं। उसने बड़ी सहनशक्ति से सब कुछ सह लिया। वह सौतेली माँ अब उसकी शादी एक रोगी बुड्ढे से करना चाहती है। पिता

एकदम चुप बैठा है। इसलिए आत्महत्या करने के लिए पड़ोस के गाँवसे यहाँ आयी हुई है। संयोगवश गोविंद भी वहाँ आया।

दोनों अपनी-अपनी कहानी एक दूसरे से बता चुके। तब सरला ने गोविंद से कहा "तुम बहुत ही भलमानस हो। भूत के बदले अगर मेरी मदद करोगे तो हम दोनों सुखी रह सकते हैं। मेरी बात मानो और मुझसे शादी करो"।

"मुझे भी तुम बहुत अच्छी लगी हो। लेकिन भूत की सहायता का कर्ज चुकाना मेरा धर्म है, मेरा कर्तव्य है। इसलिए मैं मौत को टाल नहीं सकता" गोविंद ने कहा।

सरला ने खूब सोचा और कहा "देखो, तुम बड़े पुण्यात्मा हो। अच्छे मानव हो, तुम जैसा मानव मरेगा तो वह भूत नहीं बन सकता। सीधे स्वर्ग जायेगा। तब भूत के साथ रहने की बात ही नहीं होगी। मेरी बात मानो और मुझसे शादी करो। हम मानव बनकर रहेंगे और भूत के निवास-स्थल के पास ही घर बनाकर निवास करेंगे। तुम भूत के संग हो तो मैं तुम्हारे संग रहूँगी।"

सरला की बातें गोविंद को ठीक जँचीं। भूमि और आकाश को साक्षी बनाकर तक्षण ही उन दोनों ने विवाह कर लिया। दोनों भूत से मिलने निकल पड़े।

जब वे वहाँ गये, तब उनके सामने एक देवता पुरुष प्रत्यक्ष हुआ और बोला "मैं शापग्रस्त देवपुरुष हूँ। समस्त सुखों का अनुभव करते हुए भी शाप के कारण मुझे भूत बन जाना पड़ा। तुमने हृदयपूर्वक मेरी सहायता करने का निश्चय किया; मेरे संग रहने का निर्णय लिया। तुमने मेरे लिए त्याग करना चाहा, इसलिए मैं अब शापमुक्त हो गया हूँ। आप दोनों को आशीर्वाद देने के लिए ही यहाँ प्रतीक्षा में बैठा हूँ। यही मेरी आखिरी मुलाकात है।" कहकर उसने उन्हें आशीर्वाद दिया और दोनों को थैली भर सोना भी।

गोविंद सरला और सोने को लेकर अपने माँ-बाप के पास गया। उनका आशीर्वाद पाया। जब तक वे जिन्दा रहे, दूसरों की मदद करते रहे।

शुक्राचार्य ने जप ययाति को शाप दिया कि वह वृद्ध हो जायेगा तो ययाति बहुत ही घबरा गया। वह शुक्राचार्य की शरण में आया, उसके पाँव पकड़े और कहा "आपका शाप निराधार है, न्याय-संगत नहीं है। शर्मिष्ठा ने संतान की भिक्षा माँगी थी। यदि मैं उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करता तो भ्रूण हत्या का पाप मुझे लगता। उसी पाप-भीतिवश मैने उसको स्वीकार किया। मेरा उद्देश्य देवयानी के साथ अन्याय करने का कदापि नहीं था।"

"मेरा शाप किसी भी स्थिति में व्यर्थ नहीं हो सकता। अगर तुम कुछ और समय तक अपना यौवन बनाये रखना चाहता हो तो एक उपाय है। अपना बूढ़ापन किसी युवक को दो और उसका यौवन तुम लो।" शुक्र ने कहा।

ययाति ने सोचा कि अपना बुढ़ापा किसी को लेने के लिए पूछने से तो अच्छा यही होगा कि वह अपने पुत्रों से ही पूछे। उसने यह भी निर्णय किया कि जो पुत्र इसकी स्वीकृति देगा, उसी का राज्याभिषेक करूँगा; उसी को सिंहासन पर बिठाऊँगा। उसने अपने मन की बात शुक्र से भी कही। उसने इसकी सम्मति दी।

ययाति देखते-देखते वृद्ध हो गया। सिर में कंपन आ गया। हड्डियों में दिलाई आ गयी। बाल श्वेत हो गये। मुखड़े पर सिकुड़नें आ गयीं। वह दमे का शिकार हो गया। इसी स्थिति में उसने अपने बड़े बेटे यदु को बुलाया और पूछा "पुत्र, क्या कुछ समय तक मेरा बुढ़ापा तुम स्वीकार करोगे और अपना यौवन मुझे दोगे? थोड़ा समय व्यतीत होने के बाद अपना बुढ़ापा वापस लूँगा और तुम्हारा यौवन तुम्हें दे दूँगा।"

यदु ने पिता के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। उसने कहा "बिना यौवन के जीने का कोई अर्थ ही नहीं। यौवन तो जीवन का सार है।

जो अपने पुत्रों का यौवन पाकर विलास भोगना चाहते हैं।

शर्मिष्ठा के पुत्रों में से छोटे पुत्र पूर ने पिता के प्रस्ताव को स्वीकार किया। शुक्र की कृपा से ययाति ने अपना बुढ़ापा पूर को दिया और उसका यौवन लिया। विश्वाचि नामक एक अप्सरा को लेकर वह सुंदर प्रदेशों में विहार करने चला गया। उसके साथ विलासमय जीवन बिताने लगा। जब अपनी सारी आशाएँ पूर्ण हो गयीं, तब लौटा और पूर से अपना बुढ़ापा वापस लिया और उसका यौवन उसे दे दिया। उसका राज्याभिषेक भी किया।

पूर की दो पत्नियाँ थीं। पौष्टि व कौसल्या उनके नाम थे। दोनों के पुत्र हुए। कौसल्या की जो संतान हुई, उनमें से जनमेजय की परंपरा की सोलहवीं पीढ़ी में दुष्यंत का जन्म हुआ। विश्वामित्र की पुत्री शकुंतला के साथ दुष्यंत का विवाह हुआ। उनका भरत नामक एक पुत्र हुआ।

इस सारहीन बुढ़ापे को पाकर मैं क्या करूँगा? आप तो जानते ही हैं कि जीवन की सब आकांक्षाएँ इस यौवन - काल में ही पूर्ण होती हैं। जीवन का माधुर्य यौवन ही में है। ऐसे यौवन का त्याग मैं क्यों करूँ? अपने जीवन को सारहीन क्योंकर बनाऊँ।''

पुत्र की बातों से ययाति क्रोधित हो गया और घोषणा की कि ना ही यदु राजा बनेगा या ना ही उसकी संतान।

अकेले यदु ने ही नहीं, बल्कि उसके पुत्रों में से किसी ने भी बुढ़ापे को स्वीकार करने से अस्वीकार कर दिया। अपने पिता के प्रस्ताव को उन्होंने निस्संकोच ठुकरा दिया। उनको इस बात पर आश्चर्य भी हुआ कि ये कैसे पिता हैं,

विश्वामित्र की पुत्री के जन्म की कथा यों है।

विश्वामित्र ने घोर तपस्या की। उसकी तपस्या की तीक्षणता को देखकर इंद्र भयभीत हो गया। उसने मेनका नामक एक अप्सरा को बुलाया और उससे कहा ''विश्वामित्र घोर तपस्या कर रहा है। मुझे भय है कि यदि उसकी तपस्या सफल हो जाए तो उससे देवताओं को अपार नष्ट होगा। उनकी दुस्थिति होगी। अतः तुम जाओ। अपने सौंदर्य और चातुर्य से उसकी

तपस्या का भंग करो। देवलोक तुम्हारा आभारी रहेगा''। मेनका चाहती तो नहीं थी कि एक तपस्वी की तपस्या भंग करू! किन्तु क्या करे? उसे देवलोक के अधिपति इंद्र की आज्ञा माननी ही पड़ी। अलावा इसके, वह इस कार्य में सफल होने पर देवलोक की भी रक्षा कर पायेगी।

विश्वामित्र कोई साधारण मनुष्य नहीं था। उसका जन्म राजवंश में हुआ, परंतु अपनी अद्भुत तपोशक्ति से ब्राह्मण हुआ। बड़े ही क्रोधी स्वभाव का था। वशिष्ट जैसे महर्षि को भी उसने पुत्र-शोक में डुबो दिया। शाप से चांडाल बने त्रिशंकु से उसने यज्ञ करवाया। उससे डरकर इंद्र स्वयं छिप गया। उस त्रिशंकु को विश्वामित्र ने अपनी शक्ति के बल पर स्वर्ग भेजा। देवताओं ने जब उसे स्वर्ग से ढकेल दिया तब विश्वामित्र ने अंतरिक्ष में उसके लिए एक विचित्र स्वर्ग की सृष्टि की। उसमें त्रिशंकु को बसाया। मेनका विश्वामित्र की अद्भुत शक्तियों को भली-भांति जानती थी। फिर भी उसकी तपस्या को भंग करने का उसने साहस किया। वह विश्वामित्र के आश्रम में पहुँची।

मेनका विश्वामित्र से मिली। उसे सविनय प्रणाम किया। आश्रम में ही रहने लगी। धीरे-धीरे मदमस्त बहारों में झूमती हुई अति सुंदर मेनका ने विश्वामित्र का ध्यान आकृष्ट किया। उसकी अपूर्व रूपरेखाओं तथा उसके सौंदर्य को देखकर विश्वामित्र का मन डाँवाडोल हो गया। उसके मन की स्थिति ताड़ गयी मेनका।

जब उसे लगा कि अपने लक्ष्य की सिद्धि होगी तो मेनका ने अपने को विश्वामित्र को समर्पित किया। दोनों पति-पत्नी बनकर सुखमय जीवन व्यतीत करने लगे। फलस्वरूप एक सुंदर पुत्री पैदा हुई। एक दिन मेनका ने उस शिशु को मालिनी नदी के तट पर रख दिया और देवलोक लौट पड़ी।

उस प्रदेश में क्रूर जंतु थे। शकुंत पक्षियों ने अपने पंखों से ढककर उस शिशु की रक्षा की। दुपहर को जब कण्व महामुनि स्नान करने आये तो उन्होंने देखा कि शकुंत पक्षियों के पंखों के नीचे एक शिशु सुरक्षित है। उन्होंने देखा कि आसपास कहीं कोई मानव है ही नहीं। वे उस शिशु को अपने आश्रम में ले गये। उसका नाम

रखा शकुंतला। सगी पुत्री की तरह उसकी देखभाल करने लगे। उसकापालन-पोषण किया।

शकुंतला कण्व महामुनि को ही अपना पिता मानने लगी। आश्रम के सारे काम-काज करती रही। वह सुंदर तो थी ही, साथ ही सौम्य भी।

एक बार दुष्यंत सपरिवार मालिनी नदी के पास आखेट के लिए आया हुआ था। वहाँ उसने कण्व का आश्रम देखा। उसे लगा कि यह उत्तम तथा श्रेष्ठ आश्रम है। वहाँ मुनिकुमार वेदों का पठन कर रहे हैं। मुनि अग्नि में समिधाएं डाल रहे हैं। कहीं अध्ययन हो रहा है तो कहीं चर्चाएं। सामगान का मधुर गायन हो रहा है।

दुष्यंत ने अपने परिवार के सदस्यों को शिबिरों में ठहरने की आज्ञा दी और स्वयं आश्रम में आया। वह कण्व कुटीर के पास आया। उस समय कण्व कुटीर में नहीं थे। दुष्यंत ने आवाज़ दी कि क्या कोई कुटीर में है? हो तो बाहर आये। तपस्विनी के वेष में शकुंतला बाहर आयी, यह देखने कि कौन बुला रहा है। दुष्यंत को देखते ही वह समझ गयी कि कोई राजा है। उसने उसका स्वागत किया, आतिथ्य दिया और पूछा "बताइये, आपको क्या चाहिये"।

उसकी सुंदरता और सकुमोलता पर दुष्यंत मंत्रमुग्ध हो गया। उसके अतिथि-सत्कार पर आनंदित हुए उसने कहा "कन्या, मैं यहाँ के जंगल में आखेट करने आया हूं। सोचा कि कण्व महामुनि का दर्शन कर लूं। क्या वे कुटीर में नहीं है?"

"वे मेरे पिताश्री हैं। फल व समिधाएँ ले आने वे गये हुए हैं। आपको प्रतीक्षा करनी होगी" शकुंतला ने कहा।

शकुंतला की बात करने की पद्धति देखकर दुष्यंत बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसके हृदय में उसने स्थान कर लिया। यह तो देखने से ही ज्ञात होता है कि वह अभी कन्या है, परिणीता नहीं है। उसने शकुंतला से कहा "मैंने तो सुना था कि कण्व आजन्म ब्रह्मचारी हैं। तब तुम उनकी पुत्री कैसे हुई? बताओ कि तुम किसकी पुत्री हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं? इस आश्रम में तुम्हारा कैसे आना हुआ? तुमको देखकर मेरा मन मेरे वश में नहीं है। तुम्हारे प्रति आकर्षित

से विदा ली और कहा राज्य लौटकर तुम्हें ले आने अपने आदमियों को भेजूंगा''। शकुंतला को अपने पति से बिछुड़ते हुए दुख हुआ। पर दुष्यंत ने उसे समझाया और शांत किया।

दुष्यंत भीतर ही भीतर डर रहा था कि कण्व महामुनि को इस बात का पता लग जाए तो शायद वे क्रोधित हो जाएंगे। शकुंतला को भी इसका भय था।

कण्व महामुनि कंदमूल फल आदि ले आये। हाथ मुंह धोने के बाद बैठ गये। शकुंतला भयभीत होती हुई, लज्जित होती हुई निकट आकर खड़ी हो गयी।

अपनी दिव्यदृष्टि से कण्व ने सब कुछ जान लिया, जो हुआ। उन्होने कहा ''पुत्री, तुमने योग्य वर से विवाह किया है। इस गंधर्व विवाह के परिणामस्वरूप तुम्हारा एक पुत्र होगा, जो एक बड़ा सम्राट होगा। बोलो, क्या तुम्हारी कोई इच्छा है?''

शकुंतला ने कहा ''मेरा पुत्र दीर्घायु का हो, बलवान हो, वंश का कर्ता हो। यही मेरी इच्छा है। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।''

कण्व ने तथास्तु कहकर आशीर्वाद दिया। शकुंतला के मन को अब शांति प्राप्त हुई।

शकुंतला का एक पुत्र हुआ। कण्व महामुनि ने उस बालक के लिए शास्त्रीय पद्धति से तथा क्षत्रिय योग्य यज्ञ आदि किये। वह बालक शुक्लपक्ष चंद्र की तरह पनपने लगा। छह वर्ष की आयु में ही वह शेरों और हाथियों पर बैठकर निर्भीक जाने लगा। आश्रम के पेड़ों से उन्हें बाँधता और स्वेच्छा से उनसे खेल-खिलवाड़ करता रहता था।

यह देखकर आश्रमवासी भयसे थर-थर काँपते थे। प्यार से सब लोग उसे सर्वदमन कहकर पुकारते थे।

एक दिन कण्व ने शकुंतला से कहा ''पुत्री, इस आयु में ही तुम्हारा पुत्र युवराज बनने की दशा में है। अच्छा तो यही होगा कि वह अपने पिता के पास रहे। पति के होते हुए तुम्हारा भी मायके में इतने दिन रहना अच्छी बात नहीं है। तुम्हें तुम्हारे पति के पास भेजने का प्रबंध करूंगा''।

कण्व के शिष्य शकुंतला और उसके पुत्र को
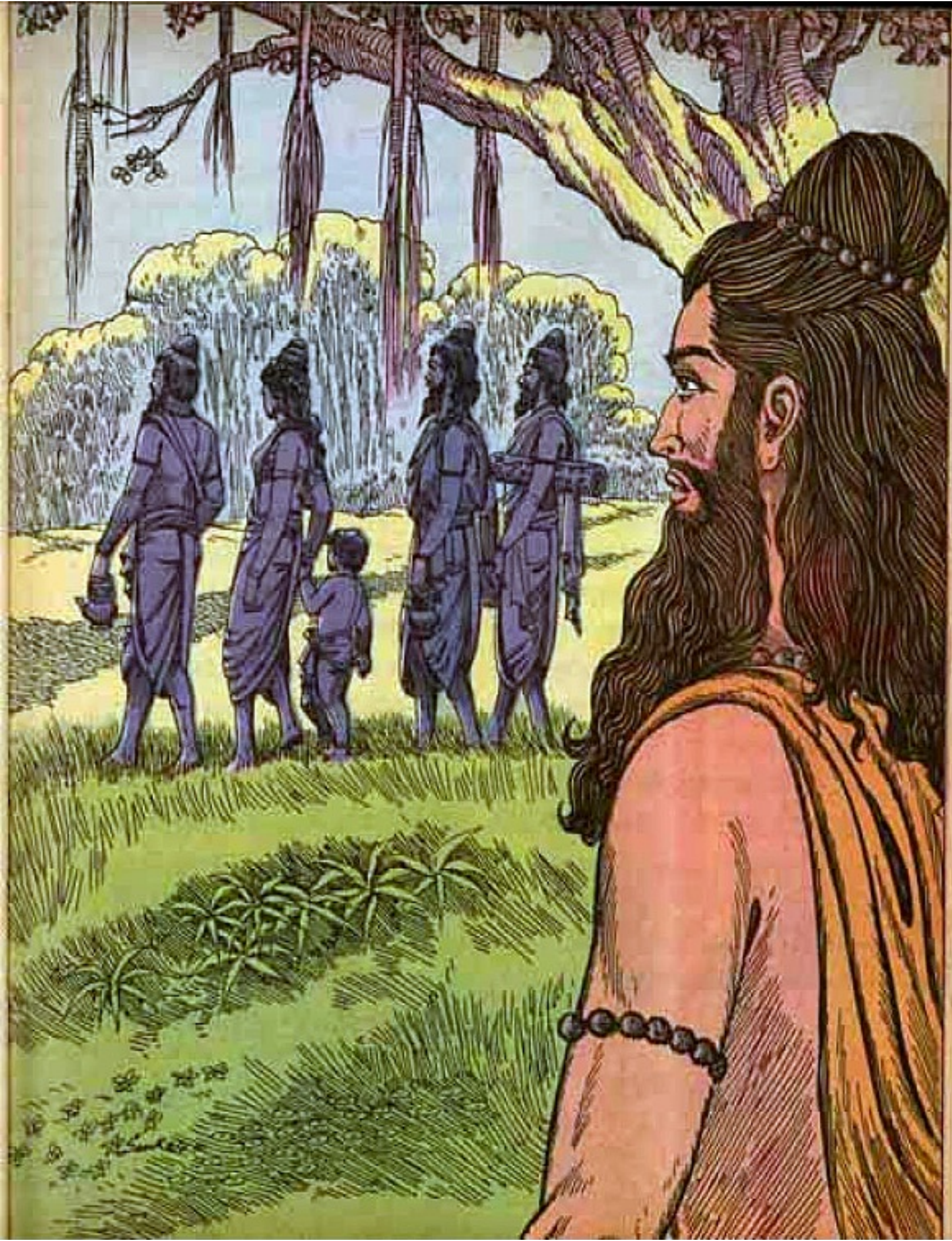
लेकर दुष्यंत की राजधानी में पहुँचे। शकुंतला की अनुमति पाकर आश्रम लौटे।

दुष्यंत के द्वारपालकों ने शकुंतला तथा उसके पुत्र को अपने राजा से मिलने दिया।

दुष्यंत शकुंतला को पहचान नहीं पाया। शकुंतला ने दुखी होकर कहा "राजन्, एक बार आप आखेट के लिए आये थे। उस समय कण्व मुनि के आश्रम में पधारे थे, क्या यह सब आपको याद नहीं? आपने मुझे वचन दिया था कि हमारे पुत्र को आप राजा बनाएँगे। अपना वचन आप मत तोड़िये। बीती घटनाओं का स्मरण कीजिये और मुझे स्वीकार कीजिये।"

दुष्यंत के स्मृति-पटल पर पूरी घटना तथा बातें याद आती गयीं। किन्तु याद ना आने तथा उसे ना पहचानने का नाटक करते हुए उसने कहा "पापिन, असल में तुम हो कौन? मैं तो तुम्हें जानता ही नहीं। व्यर्थ बातें करना छोड़ो और यहाँ से चली जा।"

शकुंतला बहुत दुखी और क्रोधित हुई। उसने दुष्यंत से कहा "राजन्, आपका कहना है कि आप कुछ नहीं जानते? वहाँ कोई और नहीं था, इसलिए असत्य बोलकर अपनी रक्षा करना चाहते हैं? जो हुआ, उसके साक्षी आप हैं। आपकी अंतरात्मा साक्षी है। सच्चाई को छिपाना महापाप है। जिस सद्बुद्धि से आपने उस दिन मुझसे विवाह रचाया था, उसी सद्बुद्धि से आज मुझे अपनाइये। अपना चरित्र कलंकित मत कीजिये। पशु-पक्षी भी अपनी संतान से प्यार करते हैं। अपने इस पुत्र को ठुकराइये मत।"

इतना सब कुछ कहने के बाद भी दुष्यंत के व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह उसे और बालक को स्वीकार करने तैयार नहीं हुआ। उस समय आकाश से एक अशरीरवाणी प्रतिध्वनित होती हुई सुनायी पड़ी "राजन्, यह बालक तुम्हारा और शकुंतला का जन्मा पुत्र है। प्रेम से इस बालक को अपनाओ। भरत के नाम से यह सुप्रसिद्ध होगा।"

दुष्यंत का भय दूर हो गया। लोक को मालूम हो गया कि शकुंतला उसकी पत्नी है और भरत उसी का पुत्र है। अतः उन्हें स्वीकार किया।

बड़ी और छोटी बहन

वरलक्ष्मी और धनलक्ष्मी दोनों बहनें थीं। उम्र में अधिक भेद ना होने के कारण सहेलियों का सा आपस में व्यवहार करती थीं। पर छोटी बहन में ईर्ष्या, असहनशक्ति तथा अहंकार मात्रा से अधिक ही थे।

दोनों में धनलक्ष्मी अधिक सुंदर थी। उसकी सुंदरता पर एक धनवान का बेटा रीझ गया और उससे विवाह का प्रस्ताव रखा। माता-पिता ने सोचा कि बड़ी की शादी हुए बिना छोटी की शादी कैसे करें। आखिर उन्होंने वरलक्ष्मी के लिए भी एक वर चुना। वरलक्ष्मी का पति संपत्तिवान नहीं था। वह राजा के दरबार में काम करता था। देखने में सुंदर तो नहीं था, परंतु उसे बदसूरत भी नहीं कह सकते।

दोनों बहनों की शादियां हुईं। वे दोनों परिवार बसाने अपने-अपने ससुराल गये। धनलक्ष्मी चैन से रहती थी, परंतु सदा अपनी दीदी के परिवार की हालत जानती रहती थी। जब-जब उसे मालूम हुआ कि दीदी खुश है और परिवार में उसका आदर हो रहा है, तो वह जलने लगी। उसने पति से एक बार कहा "हम बहुत ही धनवान हैं। लेकिन बहुतों का कहना है कि दीदी हमसे अधिक संतुष्ट रहती है; हमारे परिवार से उसका परिवार अच्छा है।" यों बार-बार वह कहने लगी।

वरलक्ष्मी का घर छोटा है। घर में कोई भी कीमती चीज़ है ही नहीं। नौकर-नौकरानियां हैं ही नहीं। सब प्रकार से वे उनसे बहुत कम हैं। इतना होते हुए भी भला वे कैसे संतुष्ट रह पा रहे हैं? यह बात धनलक्ष्मी और उसके पति की समझ में नहीं आयी। उनको विचित्र लगा।

वरलक्ष्मी का पति भागवत पढ़ता है और उसका विवरण पत्नी को सुनाता रहता है। भागवत सुनने उसके पास बहुत लोग भी आते

हैं। सब उसकी बहुत प्रशंसा करते रहते हैं। धनलक्ष्मी ने सोचा कि दंपतियों के आनंद और सुख का यह भी एक कारण होगा। वह स्वयं देखना चाहती थी कि दीदी के इस आनंद के पीछे क्या रहस्य है। जिद करके वह अपने पति को भी अपने साथ दीदी के घर ले गयी। उसका असली उद्देश्य तो अपनी दीदी और उसके पति को नीचा दिखाने का था।

एक दिन वरलक्ष्मी का पति जब भागवत पढ़ रहा था तो धनलक्ष्मी के पति ने उसकी नयी-नयी व्याख्याएं बतायीं। यह सुनकर लोगों को ताज्जुब हुआ और उन्होंने उससे पूछा ''महोदय, क्या आप अपने यहाँ भागवत सुनाते हैं?''

उसने कहा ''मैं भागवत सुनाना चाहता हूँ, किन्तु समय का अभाव है। हर दिन व्यापार संबंधी सलाहें पूछने लोग आते-जाते हैं। मेरे यहाँ उनकी क़तार लग जाती है। मुझे तो फ़ुरसत ही नहीं होती। मेरी सलाहों की वजह से लाखों अशर्फ़ियाँ वे कमा पाते हैं। भागवत का ज्ञान पठन से होता है, किन्तु व्यापार का ज्ञान जन्म से मिलता है''।

सबने उसकी प्रशंसा की। कुछ लोगों ने तो उसकी सलाहें भी पूछीं। वरलक्ष्मी के पति ने भी उसकी प्रशंसा करते हुए कहा कि जिनको काम नहीं, वे भागवत पढ़ते और सुनते हैं। धनलक्ष्मी के पति के पास फ़ुरसत ही कहाँ है? उसका हर क्षण मूल्यवान है''।

वरलक्ष्मी के पास देवी की एक प्राचीन मूर्ति थी। एक दिन जब वह पिछवाड़े में गढ़ा खोद रही थी तब वह उसे मिली। वह मूर्ति देखने में बड़ी ही अद्‌भुत लगती थी। बहुत-से लोगों ने कहा भी कि मुंह माँगा धन देंगे, हमें दे दीजिये। परंतु वरलक्ष्मी ने उसे बेचा नहीं। उस मूर्ति को देखने के लिए कितने ही लोग उसके घर आ-जाया करते थे। धनलक्ष्मी को लगा कि इसपर वरलक्ष्मी को गर्व है।

चार दिन रहकर लौटते समय धनलक्ष्मी ने दीदी और जीजाजी को अपने घर आने का आग्रह किया। धनलक्ष्मी मन ही मन यह सोच रही थी कि अपनी दीदी को अपना वैभव दिखाऊँगी और प्रमाणित करूँगी कि मुझमें और तुममें आकाश-

पाताल का अंतर है।

वरलक्ष्मी ने उनका आह्वान स्वीकार किया और कहा "बहन, मेरे घर पहली बार आयी हो। तुम्हें कुछ देकर बिदा करने की इच्छा हो रही है। तुम्हारे ओहदे के लायक तो मैं दे नहीं पाऊँगी। मुझे संदेह है कि साड़ियाँ अगर दूँ तो उन्हें तुम पहनोगी भी नहीं। कोई ऐसी चीज पूछो, जो मैं तुम्हें दे पाऊँगी। वह मेरे स्तर के ऊपर का ना हो। तुम्हें देकर बहुत खुशी होगी मुझे।" पल भर में धनलक्ष्मी ने देवी की मूर्ति माँगी और वरलक्ष्मी ने उसे दे दी।

गाँव वापस आने के बाद धनलक्ष्मी के पतिने उससे कहा "तुम उनसे देवी की मूर्ति क्यों ले आयी हो? इससे क्या तुम्हारी दीदी का महत्व बढ़ नहीं जायेगा?"

धनलक्ष्मी हँसकर बोली "जो वस्तु मेरे पास है, वह किसी और के पास ना हो, यह मेरा सिद्धांत है। इस अद्‌भुत मूर्ति से मैंने दीदी को वंचित कर दिया। ऐसी मूर्ति मेरे सिवा और किसी के पास है ही नहीं और होनी भी नहीं चाहिये। अब आप ही बताइये कि अब दीदी का महत्व बढ़ गया या घट गया? मैं तो थोड़े ही किसी से बतानेवाली हूँ कि वह मूर्ति दीदी ने मुझे दी है।"

कुछ दिनों के बाद वरलक्ष्मी और उसका पति उसके घर आये। अपनी दीदी को अपना वैभव दिखाकर घमंड करने लगी धनलक्ष्मी। वरलक्ष्मी अपनी बहन के वैभव को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई। उनकी ऐशो-आराम की जिन्दगी

देखकर वह बहुत ही खुश हुई। किन्तु धनलक्ष्मी ने सोचा कि दीदी अंदर ही अंदर जल रही होगी, बाहर से खुशी का नाटक कर रही है।

वरलक्ष्मी उस दिन अपने घर लौट रही थी। उस समय वहाँ एक व्यापारी आया और बोला "दो मूल्यवान मोतियाँ मेरे पास हैं। ऐसे मोती आपको कहीं नहीं मिलेंगे। हर एक का दाम दस हजार अशर्फ़ियाँ हैं। आप इनमें से एक खरीदेंगे तो दूसरा किसी राजा को बेच दूँगा।"

धनलक्ष्मी उन मोतियों को देखकर उनपर रीझ गयी। उसने कहा "जब ऐसे मोती कहीं नहीं हैं तो मैं दोनों खरीद लूँगी"।

व्यापारी आश्चर्य से बोला "दोनों लेकर क्या करेंगी? हार में एक ही काफी पड़ता है। दूसरा

मोती किस हार में डालेंगे? मेरे पास अद्‌भुत बारह रत्न हैं। बारह रत्नों से जुड़ा हार देखने में अद्‌भुत लगेगा। उन्हें खरीदिये''।

धनलक्ष्मी ने 'ना' कहते हुए कहा ''बारह लेकर मैं क्या करूँगी। दोनों मोतियाँ मैंने इसलिए लिया कि मैं नहीं चाहती कि ऐसा मोती किसी और के पास हो।''

व्यापारी ने दोनो मोतियाँ उसे दिये और धन लेकर चुपचाप चला गया। वरलक्ष्मी जब लौटने लगी तब धनलक्ष्मी ने एक सस्ती साड़ी खरीदी ओर उसे भेंट में दी।

अब धनलक्ष्मी के आनंद का आर-पार ना रहा। उसे इस बात की खुशी थी कि हर बात में मैं अपनी दीदी से बड़ी हूँ। इसके एक साल ही के अंदर वह बहुत मोटी हो गयी। शायद इसके कारण थे - बेकार बैठे रहना, सदा खाते रहना। उसको अपने मोटेपन पर चिंता होने लगी। उसे लगने लगा कि इस कारण से उसकी सुंदरता घट गयी।

''अब मेरी दीदी बहुत सुंदर लग रही होगी। वह बहुत पतली हो गयी होगी''। अक्सर यही सोचती रहती और अंदर ही अंदर कुढ़ती रहती।

अपना मोटापन कम करने के लिए उसने वैद्यों को बुलवाया। उन्होंने उसकी बखूबी परीक्षा ली और कहा ''यह खोखला मोटापन है। इसकी वजह से छाती में दर्द होने की संभावना है। दमे के शिकार भी हो सकती हैं। हड्डियों में दर्द भी होने की संभावना है। कुछ समय तक आपको परहेज़ रखना होगा, व्यायाम करना होगा''।

वैद्यों की सलाह के मुताबिक उसने कसरत करना शुरु किया तो थकावट महसूस करने लगी। साँस ठीक-ठीक ले नहीं पाती थी। खाना कम कर दिया तो कमजोरी महसूस करने लगी। अब वह घबरा गयी। उसे लगा कि जीवन भर ऐसी ही मोटी रहूँगी तो कुछ कर ना पाऊँगी। उस घबराहट की वजह से वह बीमार पड़ गयी। जब देखो, पलंग पर पड़ी रहती।

बहन की बीमारी की खबर पाकर वरलक्ष्मी उसे देखने आयी। दीदी को देखते ही धनलक्ष्मी खुशी से फूल उठी। क्योंकि उसकी दीदी उससे भी अधिक मोटी हो गयी। उसने दीदी से पूछा

"अरे यह क्या? इन मोटी कैसी हो गयी?" अपनी खुशी वह छिपा नहीं पा रही थी।

बहन को तो चाहिये था कि वह उसका कुशल-क्षेम पूछे। पर वह तो उसके मोटेपन की बात कर रही है। इससे वरलक्ष्मी को थोड़ा रंज हुआ। उसने अपनी बहन की बीमारी के कारण और लक्षण पूछे और जानकारी प्राप्त की।

दीदी के मोटेपन से संतुष्ट धनलक्ष्मी ने दीदी को बहुत ही दिनों तक अपने ही पास रखा। जब वह थोड़ा-बहुत ठीक हो गयी तो फिर से वह मोटी हो गयी। वरलक्ष्मी के पति को साली के स्वभाव का पता चल गया।

उसने अपनी पत्नी से कहा "बुरा मत मानना। तुम दुबली हो तो बहुत सुंदर लगती हो। मोटामन कम करने का प्रयत्न करना"।

"सुंदरता को भाड़ में जाने दीजिये। मोटापन कम करने के लिए तो नाना प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती हैं" लज्जा से सिर झुकाकर उसने कहा।

"अपने लिए नहीं, अपनी बहन के लिए" उसके पति ने कहा। वरलक्ष्मी की समझ में नहीं आया कि पति के कहने का क्या मतलब है। तब उसके पति ने समझाया "तुम्हारी बहन इस बात पर बेहद खुश है कि अब तुम मोटी हो। मैं तो समझता हूँ कि वह बीमार है, मन से और तन से भी। अगर उसने मोटापन कम नहीं किया तो अनेक और बीमारियों का वह शिकार बन सकती है। अगर तुम दुबली हो जाओगी तो वह भी शर्त लगाकर दुबली होने की कोशिश करेगी; अपने शरीर का ध्यान रखेगी। तुम मोटी होकर भी तंदुरुस्त हो, इसमें कोई संदेह नहीं। अपनी बहन की तंदुरुस्ती के लिए तुम्हें अपना मोटापन घटाना होगा"।

अब वरलक्ष्मी समझ गयी, सच्चाई जान गयी। उसने ऐसा ही किया, जैसे पति ने चाहा। होड़ लगाकर धनलक्ष्मी ने खाना कम कर दिया, व्यायाम किया और दुबली हो गयी। अब दोनों एक समान दीखने लगीं।

दो बहनों का यह विचित्र प्रेम बहुत समय तक ऐसा ही चलता रहा।

तीन हज़ार सालों के पूर्व का मनुष्य-शरीर

हम सुनते और पढ़ते आ रहे हैं कि लाखों सालों के पूर्व के जंतु तथा पक्षियों के जीवनाम यहाँ-वहाँ पाये गये हैं। हाल ही में इरान के नामक की खान में एक मनुष्य का शरीर मिला है। आँखें, नाक, कान और मूँछें जैसी की तैसी हैं। शरीर पर ऊन की पोशाक है, एक पाँव में बूट है, और बायें कान में सोने का गहना है। उसकी वेषभूषा देखनेसे लगता है कि या तो वह प्राचीन बाबिलोनियन होगा या असीरियन। भूगर्भ शास्त्रज्ञों का अंदाजा है कि वह लगभग ३,००० वर्ष के पूर्व का होगा। उस मनुष्य के शरीर के इर्द-गिर्द मिट्टी के जो बरतन मिले, वे ई.पू. १००० वर्ष के हैं।

जान बची

इंग्लैंड के कोलचेस्टर के नगर के ऊपर से जट विमान जा रहा था। विमान चालक था टाक मोलोनी। विमान अकस्मात आकाश में उलट गया। उसने बगल में बैठे हुए अपने भाई को बाहर ढकेल दिया। पराचूट डाल लेने की भी अवधि नहीं रही। वह ३,००० फुट (९१५ मी) से नीचे गिर पड़ा। घायल तो थोड़ा हुआ अवश्य, परंतु वह जीवित रहा। बड़ी आतुरता से विमान से उतरे अपने भाई का स्वागत उसने हँसते हुए किया।

सब से बड़ी बुद्ध प्रतिमा

हाल ही में हाँककांग के समीप के लाटोव द्वीप में, ३६ मीटर की ऊँचाई की एक कांस्य बुद्ध प्रतिमा की प्रतिष्ठापना हुई। ५०,००० भक्तों ने इन उत्सव में भाग लिया। गवर्नर क्रिस पाटन ने भक्तों की प्रार्थनाओं के बीच प्रातःकाल इस प्रतिमा की प्रतिष्ठापना की।

संदेह
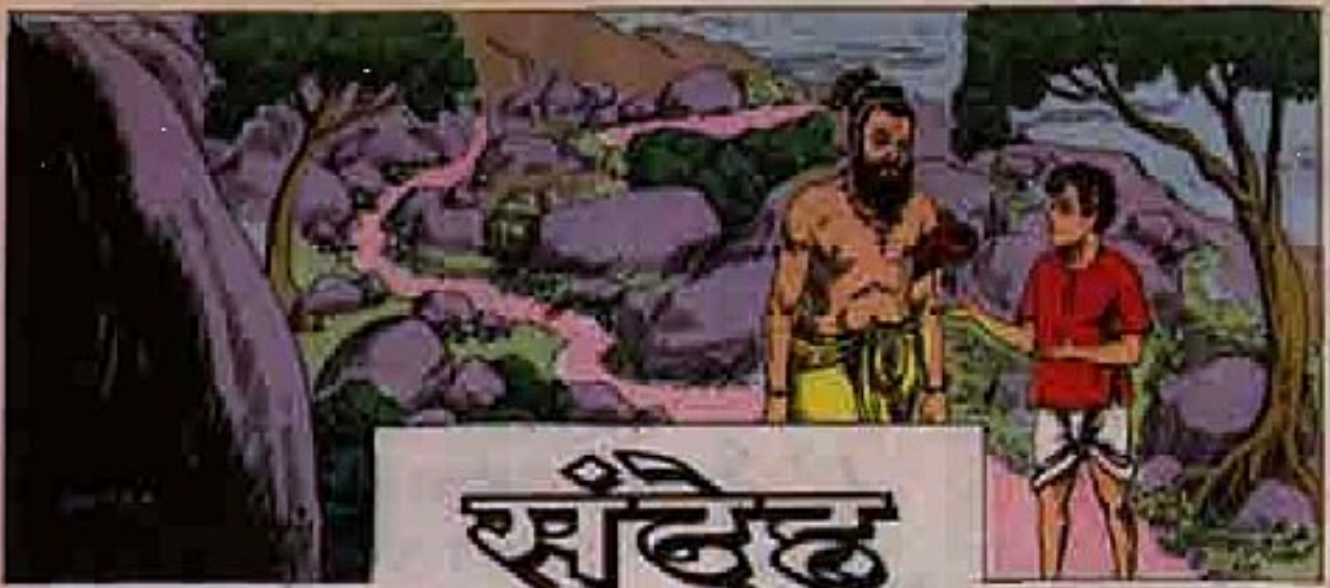
बहुत पहले की बात है। विंध्यारण्य प्रांतों में एक मुनीश्वर तपस्या में लीन रहता था। लोगों को मालूम हुआ कि मुनि गुफा में हैं। तब से लोगों की भीड़ पहाड़ पर आने लगी थी। वे अपने सुख-दुख उसे सुनाते और अपने मन का बोझ हल्का करते थे। मुनि उन्हें सलाहें देता और उनके मन के क्लेश को दूर करता था। वे आनंद से लौटते थे। मुनि को अपने शास्त्र-ज्ञान पर भरपूर विश्वास था। वह समझता था कि इस ज्ञान से वंचित होने के कारण ही मनुष्य दुखी है। जीवन-तथ्य को समझ ना पाने का कारण उनका अज्ञान है। इस अज्ञान को दूर करने की दिशा में वह सलाहें देता था। पर उसे ज्ञात नहीं था कि इन सलाहों में वास्तविकता कम और ज्ञान की मात्रा अधिक है और यह ज्ञान अनुभव रहित है।

उसके दर्शनार्थ आये हुए एक ग्रामीण ने बताया "मैं बहुत ही परिश्रम करता हूँ। खेती के कामों में चोबीसों घंटे लगा रहता हूँ। परंतु क्या लाभ? मेरी सारी कमाई गाँव का धनवान लूट लेता है। इस वजह से अपना परिवार चलाना भी मुश्किल हो रहा है। मेहनत कोई करे और कोई उसका लाभ उठाये, यह कैसा न्याय है?"

एक स्त्री ने अपना दुखड़ा यों सुनाया "धर्म शास्त्रों में तो लिखा हुआ है कि पति परमात्मा है। हाँ, मैं अपने पति को परमात्मा मानती हूँ, उनकी पूजा करती हूँ। उनसे किये जानेवाले किसी भी काम पर मैं उँगली नहीं उठाती हूँ। किन्तु उन्हें तो मेरी परवाह ही नहीं। वे मुझे सदा मारते और पीटते रहते हैं। उनका एक और स्त्री से शारीरिक संबंध भी हैं। उसके लिए वे अपना धन लुटाते हैं। अपने बच्चों से भी वे सदा नाराज़ रहते हैं। सच कहा जाए तो मेरी जीवन नरक बन गया है। आप ही बताइये कि यह कितना बड़ा अन्याय है। इस अन्याय और अत्याचार की समाप्ति का

(पचीस वर्ष पहले 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी)

क्या कोई उपाय नहीं? अपने पति की पूजा करने का क्या यही फल है? भगवान कब तक इस अत्याचार को चुपचाप देखते रहेंगे?"

लोगों के कष्टों को सुनते-सुनते मुनि के मन में संदेहों ने घर कर लिया। "मैंने जो शास्त्र पढ़े, वे तो बिलकुल अलग हैं और लोगों के अपने अनुभव कुछ दूसरे ही हैं। कितना भी सोचूं, एक-दूसरे का संबंध नहीं जुड़ता। दिन-ब-दिन धर्म का नाश हो रहा है। अधर्म की विजय हो रही है। भगवान, भूत, स्वर्ग, नरक सब झूठे लग रहे हैं। जब तक मैं लोगों के बीच में नहीं जाऊंगा, तब तक सत्य-असत्य का पता नहीं चलेगा।" ऐसा सोचकर उसने गुफा छोड़ दी और समाज में रहने के लिए निकल पड़ा।

जीवन से विरक्त मुनि सत्य जानने कमंडल लेकर जब थोड़ी दूर गया तो एक प्यारा बालक उसके सामने आया। मुनि को देखते ही बालक मुस्कुराया। दोनों ने एक दूसरे से कुशल प्रश्न पूछे और बातों में लग गये। मालूम हुआ कि दोनों एक ही जगह जा रहे हैं। बालक के इस संयोगवश मिलाप से मुनि आनंदित हुआ।

दोनों चलते-चलते एक गाँव की सरहद पर पहुँचे। कुछ लोगों ने आकर उनका स्वागत किया। वे गाँव के बीच स्थित एक भव्य भवन में उन्हें ले गये।

उस घर के मालिक ने उन्हें बहुत बड़ा भोज दिया। बालक को देखकर घर का मालिक बहुत खुश हुआ। उसने अलमारी से पुरस्कार-रूप में प्राप्त सोने की एक कटोरी निकाली और बालक के लिए उसमें खीर डाली। रात को वहीं ठहरकर उन दोनों ने अपनी थकावट दूर की और मालिक से बिदा लेकर सबेरे-सबेरे निकल पड़े। जैसे ही वे बाहर आये, भवन में शोर मच गया। मालिक की सोने की कटोरी गायब है।

कटोरी की चोरी किसी और ने नहीं, बालक ने ही की। सब का संदेह भी उसी पर था। भोजन के समय व्यस्त सब लोगों की आँखों से बचाकर बालक ने ही उस कटोरी की चोरी की। मुनि ने यह देखा भी था। जिस घर में खाया, पिया, उसी घर में बालक को चोरी करते हुए देखकर मुनि को बहुत दुख हुआ। किन्तु सबके सामने वह पूछ नहीं पाया कि ऐसा क्यों कर रहे हो?

मुनि और बालक जब जाने लगे तो ज़ोर की बारिश होने लगी। दोनों बिलकुल भीग गये। बहुत दूरी पर टिमटिमाते हुए दिये की कांति उन्होंने देखी। दोनों उस घर की तरफ बढ़े।

जब उस घर के पास आये तो उन्होंने चिल्लाते हुए पूछा "अंदर कौन है? हम पूरे भीग गये हैं। वर्षा के थम जाने तक आपके घर में शरण लेंगे। हम दोनों की रक्षा कीजिये। पुण्य मिलेगा आपको"।

एक नौकर बाहर आया और उन्हें घर के मालिक के सामने ले गया। "आधी रात को पुण्य कमाने की क्या सूझी तुम्हें, तुम्हारी बुद्धि क्या कहीं घास चरने गयी है?" मालिक ने नौकर को गालियाँ दी। वह बौखलाते हुए बोला। मालिक बहुत ही कंजूस था। नौकर के गिड़गिड़ाने पर आखिर कैसे भी हो उसने बचा-खुचा खाना खिलाने की अनुमति दी और कहा "वर्षा थमते ही उन्हें बाहर भेज देना। आजकल किसी का भरोसा भी नहीं किया जा सकता"।

बचा-खुचा खाना खाने के बाद नौकर से उन दोनों ने कहा "तुमने हमारी भूख मिटा दी। हम अब जा रहे हैं।" वे वहाँ से निकल पड़े। नौकर भी उनके साथ साथ बाहर आया।

बाहर आते ही चुरायी हुई कटोरी बालक ने उस नौकर को दी और कहा "देखो भाई, आधी रात को तुमने हमें पनाह दी है, हमें बचाया है। अपने मालिक से सिफ़ारिश करके थोड़ा-बहुत खाना ही सही, दिलवाया है। जन्म भर हम तुम्हारे आभारी रहेंगे। तुम जैसे धर्मात्माओं के ही कारण संसार अब भी टिका हुआ है। हमारी

यह छोटी-सी भेंट ही सही, यह कटोरी अपने मालिक को देना।''

बालक के इस काम से मुनि बहुत ही विस्मित हुआ। क्रोधित भी हुआ उसे कोसना भी चाहा, पर कुछ कह नहीं पाया।

बालक ने कहा ''मुनिवर, यह सब कुछ आपको विचित्र लगता होगा ना? हाँ, यह नाटक ही है और हम दोनों इस नाटक के दो पात्र हैं''।

''मैंने तो समझा था कि तुम अच्छे बालक हो। सोचा कि तुम्हारे साथ रहने से मेरे संदेह दूर हो जाएँगे''। मुनि अपने मन की बात बताने लगा।

तब बालक ने कहा ''आपके संदेहों को दूर करने के लिए ही आया हूँ। सुनिये। जिस भवन के मालिक ने हमारा अतिथि - सत्कार किया, वह ख्याति पाने के पीछे पागल है। इस पागलपन के कारण अपनी जायदाद लुटा रहा है। वह कर्ज़दार बन गया है। प्राण-समान कटोरी की चोरी से वह अब जाग गया है। उसकी आँखें खुल गयी हैं। वह अब सावधानी से बरत रहा है। मैंने चोरी करके उजड़ते हुए उसको उबारा है''।

''ठीक है। पर ऐसी कटोरी को एक कंजूस को देना, एक अयोग्य को देना भी तो ठीक नहीं है?'' मुनि ने कहा।

इसपर बालकने कहा ''आप भ्रम में हैं। उस मालिक को कमाना ही मालूम है। दूसरे को देने की उसकी आदत नहीं है। हमारी कटोरी उसके दिल में परिवर्तन ले आयी है। वह अब समझ गया कि बचा-खुचा खिलाने मात्र से जब इतनी बड़ी भेंट मिल सकती है तो पता नहीं, पेट भर खिलाने से कितनी बड़ी भेंट मिलेगी। पुण्य कार्यों पर उसकी रुचि बढ़ गयी है। उसने अब तक जो जमा किया उसे दान में दे रहा है। इससे उसकी संपत्ति लोक की भलाई करने में ख़र्च हो रही है।''

''मेरे संदेह दूर हो गये। मैं धन्य हो गया'' साधु के यह कहते ही बालक के चेहरे पर कांति छा गयी। मुन ने घूमकर देखा तो बालक वहाँ नहीं था। मुनि ने संतृप्त हृदय लेकर पुनः गुफ़ा में प्रवेश किया।

प्रकृति-रूप अनेक

रंगों से सुरक्षा

सिर पर गुच्छा होता है, शरीर पर पंख होते हैं। यह है गाढ़े रंग की रामचिरैया। पक्षियों को खा जानेवाले जंतु इस पक्षी से दूर ही रहते हैं। क्योंकि उनका समझना है कि गाढ़े रंग के पक्षी खाने के लिए रुचिकर नहीं होते। इनके पंख गाढ़े रंग के ही नहीं होते बल्कि इनसे बदबू भी आती है। अपने घोंसलों को ये पक्षी साफ़ भी नहीं रखते। बाहर जब ये जाते हैं, दुर्गंध इनमें भरपूर होती है। इसलिए उनको पकड़ने और समीप आने में जंतु सकुचाते हैं।

पेरु से आया कंद

सोलहवीं शताब्दी में दक्षिण अमेरीका के पेरु से सर वाल्टर वालीध आलू लेकर इंग्लैंड आये। इसके कुछ सालों बाद वहाँ अकाल पड़ा। उस समय खाने के लिए आलू के सिवा और कुछ नहीं था। लोगों का यह विश्वास था कि इसी आलू की वजह से उन्हें ये तकलीफ़ें झेलनी पड़ रही हैं। वे इस खाने के लिए तैयार नहीं थे, इसे खाने में उन्होने कोई अभिरुचि नहीं दिखायी। सत्रहवीं शताब्दी में इंग्लैंड में आसू की फ़सल निषिद्ध हुई। लगभग एक शताब्दी के बाद एक ब्रिटिश कर्नल जब बवारिया गया तो उसने देखा कि आलू उस देश के नागरिकों का मुख्य आहार है। वहाँ के सैनिक और मज़दूर इसे बड़े चाव से खा रहे हैं। जब वह लौटा तो उसने आलू की प्रशंसा इंग्लैंड में की और उसकेउपयोग को प्रोत्साहन दिया। १८२० में हमारे देश में नीलगिरि के पर्वतों में सर्वप्रथम आलू की फ़सल हुई।

सुवर्ण पत्ता

तमिल प्रांत के सिद्ध महात्माओं ने ''कल तामरै'' नामक पुष्प को 'महामूलिका' कहकर उसकी प्रशंसा की। इस 'पथ्यर के कमल' पुष्प के पत्ते हरे होते हैं। इस पत्ते के रस से बल की वृद्धि होती है। कहा जाता है कि इन पत्तों को भूमि पर बिछाकर उनपर खड़े हो जाएँ तो दिन में ही तारे दिखाई देने लगते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आँखों के लिए ये पत्ते इतने उपयोगी तथा लाभदायक हैं। सिद्धों का यह भी कहना है कि तांबा जैसी धातु को सोने में भी परिवर्तिन करने की इसमें शक्ति है।
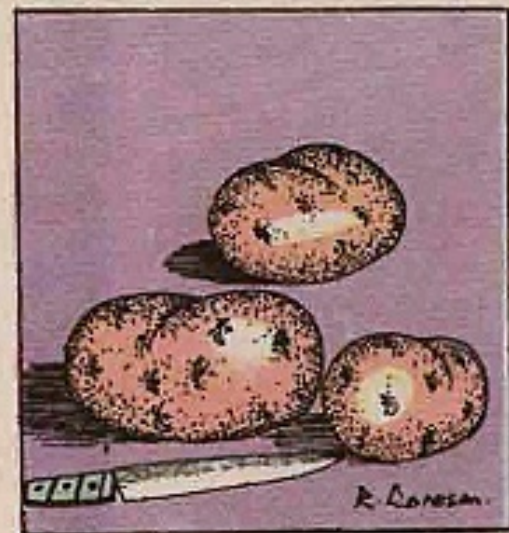
Say "Hello" to text books and friends
'Cause School days are here again
Have a great year and all the best
From Wobbit, Coon and the rest!

It's time to go back to school again. Time for text
books. Time for games. Time to meet old friends.
And make new ones. Time to start studying
again. Because there's so much to learn about
the world around you.
From all of us here at Chandamama, have a
great year in school. And remember to tell us
what you've learnt everyday, when you
come home from school !
THE
CHANDAMAMA
COLLECTION
ARTIG1246

फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता :: पुरस्कार १००)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ, नवंबर, १९९४ के अंक में प्रकाशित की जाएँगी।

S.G. SESHAGIRI
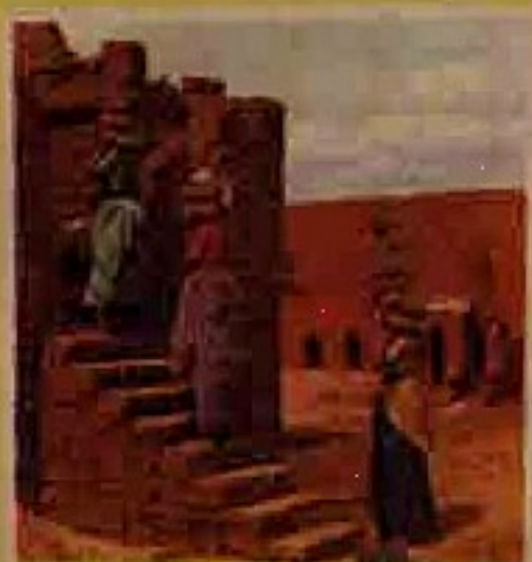
S.G. SESHAGIRI

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ १० सितंबर, '९४ तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) रु. १००/- का पुरस्कार दिया जायेगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर इस पते पर भेजें।

चन्दामामा फोटो परिचयोक्ति प्रतियोगिता, मद्रास-२६.

जुलाई, १९९४, की प्रतियोगिता के परिणाम

पहला फोटो : सखी द्वारे राह निहारे

दूसरा फोटो : सजे रंगोली सबके द्वारे

प्रेषक : अल्पना गोयल, गोयल भवन, रैल्वे रोड,

सहारनपुर (पि.ओ.) - २४७ ००१, उत्तर प्रदेश

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु ४८/-

चन्दा भेजने का पता :

डाल्टन एजन्सीज़, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

अपने प्यारे चहेते के लिए जो हो दूर सुदूर
है न यहाँ अनोखा उपहार जो होगा प्यार भरपूर

चन्दमामा

प्यारी-प्यारी सी चंदामामा दीजिए उसे उसकी अपनी पसंद की भाषा में–
आसामी, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, कन्नड
मलयालम, मराठी, उड़िया, संस्कृत, तमिल या तेलुगु
–और घर से अलग कहीं दूर रहे उसे लूटने दीजिए घर की मौज-मस्ती

चन्दे की दरें (वार्षिक)

आस्ट्रेलिया, जापान, मलेशिया और श्रीलंका के लिए

समुद्री जहाज़ से रु. 105.00 वायु सेवा से रु. 252.00

फ्रान्स, सिंगापुर, यू.के., यू.एस.ए.,
पश्चिम जर्मनी और दूसरे देशों के लिए

समुद्री जहाज़ से रु. 111.00 वायु सेवा से रु. 252.00

अपने चन्दे की रकम डिमांड ड्राफ्ट या मनी ऑर्डर द्वारा
'चन्दामामा पब्लिकेशन्स' के नाम से निम्न पते पर भेजिए।

सर्क्युलेशन मैनेजर, चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६.